प्रमुख उपनिषदों के आख्यानों का पर्यालोचन

Pramukha Upaniṣadon ke Ākyāno kā Paryālocana

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की पीएच.डी. शोध-उपाधि हेतु

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

शोधनिर्देशक

प्रो. सुधीर कुमार

शोधार्थिनी

सरिता यादव

संस्कृत एवं प्राच्यविद्या अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली-110067

2019

संस्कृत एवं प्राच्यविद्या अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली – 110067

SCHOOL OF SANSKRIT AND INDIC STUDIES

JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY

NEW DELHI-110067

15th July, 2019

DECLARATION

I, Sarita Yadav, hereby declare that the thesis entitled **'Pramukha Upaniṣadon ke Ākyāno kā Paryālocana'** submitted to **School of Sanskrit and Indic Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi-110067,** for the award of the degree of **DOCTOR OF PHILOSOPHY** is an original work and has not been submitted so far in part or full, for any other degree or diploma of any Institution/University.

Sarita Yadav

Sarita Yadav

Scanned with CamScanner

संस्कृत एवं प्राच्यविद्या अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली – 110067

SCHOOL OF SANSKRIT AND INDIC STUDIES

JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY

NEW DELHI-110067

15th July, 2019

CERTIFICATE

This thesis entitled **"Pramukha Upaniṣadon ke Ākyāno kā Paryālocana"** submitted by Sarita Yadav to **School of Sanskrit and Indic Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi-110067**, for the award of the degree of **DOCTOR OF PHILOSOPHY** is an original research work and has not been submitted so far in part or full, for any other degree or diploma of any University. This may be placed before the examiners for evaluation and for award of degree of Doctor of Philosophy.

Prof. Sudhir Kumar

(Supervisor)

Prof. Girish Nath Jha

(Chairperson)

Sudhir Kumar Arya
Professor
Special Cetre for Sanskrit Studies
Jawaharlal Nehru University
New Delhi-110067

Scanned with CamScanner

Dedicated to my parents Smt. Pavitra and Shri Pohap Singh for their blessings and their inspiration which has supported and guided me from childhood and will do so forever.

संकेत-सारणी

अ.को. –	अमरकोश
अ.रा. –	अनर्घराघवम्
अ.वे. –	अथर्ववेद
अध्या. रा. –	अध्यात्मरामायण
ऋ. –	ऋग्वेद
छा. उप. –	छान्दोग्योपनिषद्
तैत्ति. उप. –	तैत्तिरीयोपनिषद्
ध्व. का. –	ध्वन्यालोक कारिका
ध्व. लो. –	ध्वन्यालोक लोचन
निरु. –	निरुक्त
प्रश्न उप. –	प्रश्नोपनिषद्
बा. रा. –	बालरामायण
बृ. उ. –	बृहदारण्यकोपनिषद्
मनु. –	मनुस्मृति
मुण्ड. –	मुण्डकोपनिषद्
रामा. –	रामायण
वा.रा. –	वाल्मीकि रामायण
वि.को. –	विश्वकोश
स. प्र. –	सत्यार्थ प्रकाश
सं.सा.इ. –	संस्कृत साहित्य का इतिहास

आत्मनिवेदन

सर्वप्रथम मैं अपने शोधनिर्देशक एवं परम पूज्य प्रो. सुधीर कुमार के प्रति अपना आभार व्यक्त करना चाहूँगी जो मेरे लिए हमेशा प्रेरणा स्त्रोत रहे हैं। इस शोध कार्य में विषय चयन से लेकर कार्य समापन तक उनका जो सहयोग रहा वह अनिर्वचनीय है। उनकी विस्तृत ज्ञान दृष्टि ने ही मुझे उपनिषद् के क्षेत्र में शोध कार्य के नवीन आयाम प्रदान किये।

मैं संस्कृत विभाग के अध्यक्ष प्रो. गिरीशनाथ झा के प्रति कृतज्ञ हूँ। संकाय सदस्य प्रो.रामनाथ झा, प्रो. उपेन्द्र राव, प्रो. सन्तोष कुमार शुक्ल, प्रो. बृजेश कुमार पाण्डेय, प्रो. सत्यमूर्ति, डॉ. रजनीश कुमार मिश्र, डॉ. गोपाल लाल मीना, डॉ. हरिराम मिश्र और डॉ. टी. महेन्द्र को धन्यवाद कहना चाहूँगी जिनके अमूल्य सुझावों ने मुझे मेरे शोधकार्य को सारगर्भित रूप में प्रस्तुत करने में सहयोग किया।

संस्कृत विभाग के सभी कर्मचारी गणों के प्रति मैं आभार व्यक्त करना चाहूँगी। मैं संस्कृत विभाग, जवाहारलाल नेहरु विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के सभी कर्मचारियों को धन्यवाद देना चाहूँगी जिन्होंने मेरी इस शोध कार्य के लिए सामग्री-संकलन में सहायता की। विशेष रूप से विकास जी, मंजु मैडम और शबनम मैडम को धन्यवाद देती हूँ।

मेरे माता-पिता की मैं आजीवन कृतज्ञ रहूँगी जिन्होंने खुद अभावों में रहकर अपने हिस्से की खुशियाँ हम भाई-बहनों के नाम कर दी। उनके बारे में कुछ भी कहना शायद कम ही होगा क्योंकि मेरा सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही उन्हीं की देन है। मेरे बडे भैया डॉ. कृष्ण कुमार ने जीवन स्तर पर भी श्रेय-मार्ग पर बढ़ने की सलाह दी और हमेशा मुझे संबल प्रदान किया।

मेरी बड़ी दीदी विजयलक्ष्मी की मैं हमेशा आभारी रहूँगी जिन्होंने न केवल इस शोध कार्य में अपितु मेरे जीवन की हर कठिन परिस्थितियों में मेरा साथ दिया है। मेरे छोटे भाई पवन और विमल के प्यार एवं सहयोग ने मुझे हमेशा अपनी जिम्मेदारियों का आभास कराया है। मेरी भाभी मोनिका का अविचल स्नेह सदा मेरे साथ बना रहा। पति जयविन्द्र ने सदैव मेरे अध्ययन के अनुकूल वातावरण बनाने में अमूल्य अवदान दिया। नव्यांश, नैतिक, जतिन, शिवम, चार्वी की बालचपलताओं ने मेरा चित्त हमेशा प्रसन्न रखा। अनेकविद्य पारिवारिक अन्तरायों से मुक्त रखते हुए सास-श्वसुर का सतत प्रोत्साहन एवं लक्ष्य के प्रति सजगता ने सम्बल प्रदान किया। परिवार के सहयोग एवं शुभकामना के बिना शोधकार्य की साफल्यपूर्ण परिणति असंभव थी।

मित्रों में मानसिंह सर, भैरूसिंह, कनिका, रशमी दीदी की मैं जीवनभर आभारी रहूँगी जिन्होंने मेरे शोध कार्य में भी और मेरे व्यक्तिगत जीवन में भी हमेशा मुझे संबल प्रदान किया जिसके कारण मेरा शोध कार्य सम्पन्न हो सका। विशेष रूप से अरविन्द सर के अतुलनीय योगदान की आभारी हूँ। इनके अतिरिक्त मधुसूदन भाईसाहब, मंजु दीदी गजेन्द्र सर, इन्दू, देशराज सर, रूबी, पुष्प सरा, अनिल, निहारिका, इवाना, सावित्री दीदी, अनिता दीदी, सपना और कल्पना दीदी का भी आभार व्यक्त करना चाहूँगी जिन्होंने समय-समय पर मुझे उचित परामर्श दिये। महेन्द्र सर, सतीश कुमार और दीपक साहू के प्रति भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने इस शोध कार्य के दौरान प्रूफरीडिंग में मेरी सहायता की। ने शोध-सामग्री उपलब्ध कराने में मेरा सहयोग दिया अत: मैं उसके प्रति भी अपना आभार व्यक्त करना चाहती हूँ।

अन्त में मैं उन सभी के प्रति अपना आभार व्यक्त करना चाहूँगी जिन्होंने इस शोध कार्य के दौरान प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से मेरी सहायता की।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

तिथि : 15-07-2019

सरिता यादव

Email- sarita89ya@gmail.com

विषयानुक्रमणिका

विषय-प्रवेश 1-32

प्रथम अध्याय: प्रमुख उपनिषदों के आख्यानों का सामाजिक स्वरूप 33-76

१.१ यम-नचिकेता आख्यान (कठोपनिषद्) का सामाजिक स्वरूप

१.२ पिप्पलाद-कबन्धी आख्यान (प्रश्नोपनिषद्) का सामाजिक स्वरूप

१.३ शौनक – अंगिरा संवाद (मुण्डकोपनिषद्) का सामाजिक स्वरूप

१.४ आचार्य – स्नातक आख्यान (तैत्तिरीयोपनिषद्) का सामाजिक स्वरूप

१.५ भृगु – वारुणि आख्यान (तैत्तिरीयोपनिषद्) का सामाजिक स्वरूप

१.६ आरुणि – श्वेतकेतु आख्यान (छान्दोग्योपनिषद्) का सामाजिक स्वरूप

१.७ नारद – सनत्कुमार आख्यान (छान्दोग्योपनिषद्) का सामाजिक स्वरूप

१.८ याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी संवाद (वृहदारण्यकोपनिषद्) का सामाजिक स्वरूप

१.८.१ द्वैत की आवश्यकता व्यहवार में, परमार्थ द्वैत से परे

१.८.२ ब्रह्मज्ञान में अधिक शास्त्राभ्यास बाधक

१.९ प्रजापति आख्यान का सामाजिक स्वरूप

१.१० गुरु शिष्य आख्यान (केनोपनिषद्) का सामाजिक स्वरूप

१.११ ब्रह्म-देवता आख्यान (केनोपनिषद्) का सामाजिक स्वरूप

१.१२ सत्यकाम जाबाल आख्यान (छान्दोग्योपनिषद्) का सामाजिक स्वरूप

द्वितीय अध्याय: प्रमुख उपनिषदों के आख्यानों का सांस्कृतिक पक्ष 77-109

२.१ अङ्गिरा-शौनक आख्यान (मुण्डकोपनिषद्) का सांस्कृतिक पक्ष

२.२ मानव – परमात्मा आख्यान (ऐतरयोपनिषद्) का सांस्कृतिक पक्ष

२.३ गुरु-शिष्य संवाद तैत्तिरीयोपनिषद् का सांस्कृतिक पक्ष

२.४ बृहदारण्यकोपनिषद् में आख्यानों का सांस्कृतिक पक्ष

२.५ यम-नचिकेता आख्यान (कठोपनिषद्) का सांस्कृतिक पक्ष

तृतीय अध्याय: प्रमुख उपनिषदों के आख्यानों का नैतिक पक्ष 110-143

३.१ यम – नचिकेता आख्यान (कठोपनिषद्) का नैतिक पक्ष

३.२ पैप्पलाद-कबन्धी आख्यान (प्रश्नोपनिषद्) का नैतिक पक्ष

३.३ मुण्डकोपनिषद् में आख्यानों का नैतिक पक्ष

३.४ नारद –सनत्कुमार आख्यान (छान्दोग्योपनिषद्) का नैतिक पक्ष

३.५ प्रजापति व देव, मनुष्य, असुर आख्यान (वृहदारण्यकोपनिषद्) का नैतिक पक्ष

चतुर्थ अध्यायः प्रमुख उपनिषदों के आख्यानों का दार्शनिक पक्ष 144-182

४.१ गुरु-शिष्य आख्यान (केनोपनिषद्) का दार्शनिक पक्ष

४.२ यम – नचिकेता आख्यान (कठोपनिषद्) का दार्शनिक पक्ष

४.३ पिप्पलाद-कबन्धी आख्यान (प्रश्नोपनिषद्) का दार्शनिक पक्ष

४.४ गुरु – शिष्य संवाद (तैत्तिरीयोपनिषद्) का दार्शनिक पक्ष

४.५ गुरु – शिष्य संवाद (श्वेताश्वतरोपनिषद्) का दार्शनिक पक्ष

उपसंहार 183-199

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची 200-220

विषय प्रवेश

वैदिक साहित्य की परम्परा में उपनिषद् ज्ञानकाण्ड के प्रमुख स्रोत हैं। कर्मकाण्ड जहाँ मानव को उचित और अनुचित कर्मों के विषय में मार्गदर्शित करता है, अग्निहोत्र आदि विभिन्न प्रकार के यज्ञ व्यक्ति को स्वर्गादि ऐहिक लक्ष्यों की प्राप्ति कराते हैं वहीं ज्ञानकाण्ड मनुष्य को परम सत्य से अवगत कराता है। ज्ञान के सागर से ओतप्रोत उपनिषद् मानव मन के अनेक प्रकार के प्रश्नों से युक्त है। उत्पत्ति से पूर्व इस सृष्टि का रूप कैसा था? मानव का इस सृष्टि में क्या स्थान है?, मनुष्य के जीवन का अन्तिम लक्ष्य क्या है?, सृष्टि में मानव के जीवन का क्या प्रयोजन है?, अन्य जीवों के साथ उसका व्यवहार कैसा होना चाहिए आदि प्रश्नों के उत्तर देने में उपनिषद् पर्याप्त हैं।

उपनिषदों में वर्णित ज्ञान से न केवल भारतीय जनमानस प्रभावित हुआ अपितु विदेशी धरती पर भी इन ग्रन्थों ने अपना प्रभाव छोड़ा था अनेक देशों के शिक्षाविद्, दार्शनिक, चिन्तक, वैज्ञानिक आदि इसके प्रभाव से अछूते न रहें। उपनिषदों को पढ़कर अनेक विद्वान् इस सत्य से अवगत हुए कि भारत में बहुत पहले से ही ज्ञान की एक समृद्ध परम्परा रही है। स्पिनोजा नामक दार्शनिक सत्रहवीं शताब्दी में ही यह जानता था कि ज्ञान व दर्शन से परिपूर्ण देशों में से एक भारत है।[1] अठारहवीं शताब्दी में प्रसिद्ध

[1] *स्पिनोजा* by Alan Donagan, P. 8

दार्शनिक शोपेनहावर उपनिषदों को पढ़कर इतने प्रभावित हुए कि वह अपने बिस्तर पर उपनिषद् को रखते थे और प्रतिदिन इसका अध्ययन करते थे।[2] उन्होंने जीवन व मृत्यु दोनों में आनन्द देने वाला ग्रन्थ उपनिषद् को माना है। भारत में शाहजहाँ के ज्येष्ठ पुत्र 'दाराशिकोह' उपनिषद् से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने पचास उपनिषदों का अनुवाद "सिर्रे-अकबर" नाम से लिखा।[3] उन्होंने 'कुरान' को उपनिषद् का ही रूपान्तरण माना। एंक्विटिल ड्युपेरों नामक फ्रांसीसी विद्वान् ने उपनिषदों में वर्णित ज्ञान से प्रभावित होकर उपनिषद् का लैटिन अनुवाद 'औपनिखत' नाम से प्रकाशित कराया। रॉबर्ट ओपेनहाईमर, इरविन स्रोडिन्जर आदि वैज्ञानिक उपनिषदों से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने जीवन भर यह जानने का प्रयास किया कि ज्ञान की यह धारा भारत से यूरोप तक कैसे पहुँची। ऐसे अनेक अन्य भी विद्वान् हुए हैं जिन्होंने उपनिषदों की महानता को स्वीकार किया।

---

[2] "In the whole world, there is no study so beneficial so elevating as that of the *Upaniṣads*. It has been the solace of my life; it will be the solace of my death." - Arthur Schopenhauer, *Parerga and Paralipomena*, Vol. I., P. 397. (trans.), E.F.J. Payne, 2 Vols., (Oxford Clarendon Press, 1974)

[3] गंगोपाध्याय, श्यामल, शहजादा दाराशिकोह, पृ. ३०

वैदिक साहित्य

वैदिक साहित्य में वेद, उपवेद, वेदांग, उपनिषद् आदि आते हैं। वेदों की संख्या चार है – ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, तथा अथर्ववेद। इनके चार उपवेद हैं – आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद, तथा अर्थवेद। वेदांगों की संख्या छः है – शिक्षा, कल्प, स्वाध्याय, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द। उपनिषदों की संख्या १०८ मानी जाती है परन्तु प्रमुख उपनिषद् ११ ही माने गए हैं। वैदिक साहित्य की कोटि में उन ग्रन्थों को रखा गया है जो वेदों को ईश्वरीय वाणी मानकर मानव मात्र के लिए अपने अन्दर निहित ज्ञान को उजागर करते हैं। वैदिक ग्रन्थ मानव रचित नहीं होते और न ही उनमें किसी भी समय कोई भी परिवर्तन किया जा सकता है। ये सार्वकालिक होते हैं जो भूतकाल में सत्य थे, वर्तमान में प्रासंगिक हैं और भविष्य में भी रहेंगे।

वैदिक साहित्य के चार भाग हैं –

- संहिता
- ब्राह्मण
- आरण्यक
- उपनिषद्

इनमें संहिता व ब्राह्मण कर्मकाण्ड की कोटि में आते हैं। आरण्यक व उपनिषद् ज्ञानकाण्ड के अन्तर्गत आते हैं।

'वेद' शब्द का अर्थ

वेद शब्द का अनेक विद्वानों ने अपने अनुसार अलग-अलग अर्थ किया हैं। व्याकरणिक आधार पर वेद शब्द विद् धातु से बना है। विद् धातु का अर्थ 'ज्ञान' है जो कि दो प्रकार का माना गया है। एक लौकिक जो भौतिक साधनों से प्राप्त किया जाता है। दूसरा अलौकिक जो ध्यान और अनुभव का विषय है। भाव व करण के अनुसार 'वेद' के दस अर्थ माने गए हैं-

- **विद् सत्तायाम्**- विद्यते सत्तां गृह्णाति वस्तु अनेन वेद:॥[4]
- **विद् ज्ञाने**- वेत्ति जानाति धर्मार्थपुरुषार्थचतुष्टोपायान् अनेनेति वेद:॥[5]
- **विद् विचारणे**- विन्ते विचारयति धर्मब्रह्मणी क्रियाज्ञानमयं ब्रह्म वेति॥[6]

[4] सिद्धान्तकौमुदी

[5] सिद्धान्तकौमुदी

[6] सिद्धान्तकौमुदी

- **विद्लृ लाभे**- विन्दति लभते धर्मादिपुरुषार्थान् अनेन इति वेद:॥[7]

- **विद् चेतनाख्याननिवासेषु**- वेदायति चेतनाख्यानं निवासं च अनेनेति वेद:॥[8]

महर्षि दयानन्द ने वेदों का अर्थ करते हुए लिखा है –

वेदन्ति जानन्ति विद्यन्ते भवन्ति विदन्ति विदन्ते लभन्ते, विदन्ति विचारयन्ते सर्वे मनुष्या: सर्वा: सत्यविद्या: यैर्येषु वा तथा विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदा:।[9]

वेदों के प्रसिद्ध व्याख्याकार सायण ने वेद को इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट का निराकरण करने का साधन मानते हुए लिखा है-

इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयो: अलौकिकं साधनं यो वेदयति स: वेद:॥[10]

सायण आगे लिखते हैं कि जो ज्ञान प्रमाणों से प्राप्त नहीं किया जा सकता वह वेदों से प्राप्त किया जा सकता है-

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते।

---

[7] सिद्धान्तकौमुदी

[8] सिद्धान्तकौमुदी

[9] ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

[10] तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्यभूमिका

एतत्विदन्ति वेदेन तस्मात्वेदस्य वेदता॥[11]

उपनिषद् का अर्थ

उपनिषद् शब्द सामान्यत: तीन शब्दों से मिलकर बना है- उप+नि+सद् जिसका अर्थ है 'पास बैठना'। शिष्य अपने गुरु के समीप बैठकर ब्रह्म व जीव की एकता के विषय में ज्ञान प्राप्त करता है। यहाँ पर गुरु व शिष्य का भौतिक रूप से सामीप्य होने के साथ ही उनके मध्य अच्छे सम्बन्ध होना भी आवश्यक है। दोनों में से किसी के भी मन में कोई वैर-भाव न रहें। गुरु का लक्ष्य शिष्य को सत्य का ज्ञान कराना हो तो शिष्य के जीवन का ध्येय सत्य को आत्मसात करना हो।

अपने शाब्दिक अर्थ में उपनिषद् तीन पदों से मिलकर बना है-

- **उप (विशरण अथवा नाश)** अज्ञान का
- **नि (गति अथवा प्राप्ति)** ज्ञान की
- **सद् (अवसादन अथवा शिथिलीकरण)** संसार ही सार है इस मिथ्याज्ञान का

इस सम्बन्ध में कठोपनिषद् का भाष्य करते हुए आचार्य शंकर लिखते हैं

[11] ऐतरेयब्राह्मणभाष्यभूमिका

सदेर्धातोर्विशरणगत्यवसादनार्थस्योपनिपूर्त्वक्विप्प्रत्ययान्तस्य रूपमुपनिषदिति॥[12]

सद् धातु में क्विप् प्रत्यय के योग से विशरण गति अवसादन आदि अर्थ करते हुए 'उपनिषद्' शब्द निष्पन्न होता है।

आगे शंकर उपनिषद् के दो अर्थों पर प्रकाश डालते हैं एक मुख्य अर्थ (मुख्य वृत्ति) जो उपनिषद् विद्या को बताता है और दूसरा गौण (भक्ति वृत्ति) से जो कि उपनिषद् ग्रन्थ को बताता है। यहाँ पर आचार्य शंकर इस शंका का समाधान करते है कि उपनिषद् के किस अर्थ को प्रधान माना जाए, तो शंकर लिखते हैं वह ब्रह्मविद्या उपनिषद् ही है जो संसार के अन्तिम रूप ब्रह्म में अवसादन को बताती है और जो ग्रन्थ इस विद्या से युक्त है वह भी उपनिषद् है।

सेयं ब्रह्मविद्या उपनिषच्छब्दवाच्या तत्पराणां सहेतो संसारस्यात्यन्तावसादनत्वात्। उप निपूर्वस्य सदेस्तदर्थत्वात्। तादर्थ्यं ग्रन्थोऽप्युपनिषदिति।[13]

आगे शंकर इस बात को और भी स्पष्ट रूप से कहते हैं-

विद्यायां तु मुख्यया वृत्या उपणीषच्छब्दों वर्तते ग्रन्थे तु भक्त्येति।[14]

---

[12] कठोपनिषद् शांकरभाष्य

[13] कठोपनिषद् शांकरभाष्य

[14] कठोपनिषद् शांकरभाष्य

गायत्री परिवार के संस्थापक आचार्य श्रीराम शर्मा उपनिषद् का व्युत्पत्तिपरक अर्थ करते हुए लिखते हैं-

उप सामीप्येन नि नितरां प्राप्नुवन्ति परमं ब्रह्म विद्यां यया सा उपनिषद्।[15]

ऐतरेय आरण्यक उपनिषद् का अर्थ 'संहिता' करता है। आरण्यक का मुख्य प्रयोजन रहस्य विद्या का वन में अध्ययन करना है। इसीलिए ऐसी संहिता जो एकान्त में अथवा वन में गूढ रूप से जानी जाए, वह उपनिषद् है-

अथात: संहिताया: उपनिषद्।[16]

तैत्तिरीयोपनिषद्, उपनिषद् शब्द का अर्थ 'संहिता' करता है जिसकी व्याख्या एक पद्धति आधार पर की जानी चाहिए। वास्तव में उपनिषद् वह संहिता है जिसकी एक दर्शनिक व्याख्या की जाए-

अथ तत् संहिताया: उपनिषद् व्याख्यास्याम:।[17]

---

[15] श्रीराम शर्मा, आचार्य, १०८ उपनिषद् ज्ञानकाण्ड

[16] ऐतरेय आरण्यक 3.1.1; 2.5

[17] तैत्तिरीयोपनिषद् १/३/१

ऐतरेय उपनिषद् में उपनिषद् का अर्थ शिष्य द्वारा गुरु के समीप बैठकर ज्ञान प्राप्त करना है। यह शिक्षा ज्ञाता व ज्ञेय के मध्य एक्यभाव की है। जड व चेतन की अन्तर्भूत एकता को समझना ही उपनिषद् है-

विश्वमित्रं ह्येतदाह संशिष्यन्तम् इन्द्र उपनिषद्॥[18]

सायण के अनुसार, उप का अर्थ है 'समीप'। पाठक द्वारा स्वयं के इतना समीप आ जाना जिससे वह अपने शरीर और अपने अन्दर विद्यमान ब्रह्म दोनों को एक ही जान सके। उन्होंने जीवात्मा और परमात्मा की एकता को ही उपनिषद् माना है।[19]

केनोपनिषद् में उपनिषद् का अर्थ एक गूढ विद्या है। शिष्य अपने गुरु से ब्रह्म के रहस्य को पूछता है और गुरु उसको ब्रह्म की सभी विशेषताओं के विषय में बताता है।

उपनिषद् उपनिषदां भो ब्रूहि इति उक्त उपनिषत् ब्रह्मं वा ता उपनिषदाम् अब्रूमे इति।[20]

छान्दोग्योपनिषद् कहता है कि वैदिक मन्त्रों व कथनों से प्राप्त होने वाली शिक्षाऐं ही उपनिषद् हैं। यह शिक्षाऐं उस व्यक्ति के लिए लाभकारी हैं जो अमरता के विषय में जानना चाहता है-

---

[18] ऐतरेयोपनिषद् २/२/३

[19] Philosophical Teachings of Upanisads, p. 2

[20] केनोपनिषद् ४/७

दुग्धेऽस्मैं वाग्दोहम् उपनिषदां वेद उपनिषदां वेद।[21]

यहाँ भी उपनिषद् का अर्थ विद्या से ही अभिप्रेत है न कि उस विद्या से युक्त ग्रन्थ से।

वृहदारण्यकोपनिषद् में उपनिषद् का अर्थ एक प्रकार की उत्पत्ति बताया गया है। यहाँ पर कहा गया है कि सबसे पहले आत्मा अस्तित्व में थी, उस आत्मा से सभी लोक, देव, पंचमहाभूत आदि उत्पन्न हुए-

एतस्मादात्मन: सर्वे प्राणा: सर्वे लोका: सर्वे देवा: सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति

तस्योपनिषद् सत्यस्य सत्यम्।[22]

इसी उपनिषद् में अन्य स्थान पर यह भी कहा गया है कि उपनिषद्, वाक् से उत्पन्न हुए जो कि ब्रह्म का ही एक रूप है-

वाचा वै उपनिषद: प्रजायन्ते।[23]

शंकर से पूर्ववर्ती दो भाष्यकार हुए। एक ब्रह्मन्दिन, जिन्होंने लिखा 'उपनिसन्नत्वात् उपनिषद्' अर्थात् जिसे जाना जाए और दूसरे द्रमिडाचार्य जिन्होंने लिखा 'गहने हियं विद्या सन्निविष्टा'

---

[21] छान्दोग्योपनिषद् १/१३/४

[22] वृहदारण्यकोपनिषद् २/१/२०

[23] वृहदारण्यकोपनिष. ४/१/२

अर्थात् यह विद्या अपने गूढ रूप में स्थित है।[24]

जैसे गृह्यसूत्रों का मुख्य प्रतिपाद्य परिवार-व्यवस्था को बनाए रखने के लिए गृहस्थों द्वारा किए जाने वाले अनुष्ठान हैं वैसे ही उपनिषदों का अर्थ यहाँ पर पुरुष द्वारा सन्तानोपत्ति हेतु किए जाने वाले क्रियाकलाप हैं।[25]

'आख्यान' का अर्थ

आख्यानों का संस्कृत वाङ्मय में विशेष महत्त्व रहा है। संस्कृत ग्रन्थों में किसी भी गूढ या रहस्यमयी तथ्य को सरल शब्दों में समझाने के लिए आख्यानों की सहायता ली गई है। आख्यानों का अर्थ संस्कृत साहित्य में 'कथा' अथवा 'वृत्तान्त' के रूप में होता रहा है।

वाचस्पत्यम् में आख्यान का अर्थ '**आख्यायते अनेनेति आख्यानम्**' किया गया है अर्थात् जो कहा जाए, वह आख्यान है।[26]

साहित्यदर्पण में कहा गया है – **आख्यानं पूर्ववृत्तोक्तिः॥**[27]

---

[24] www.indiadivine.org

[25] आश्वलायन गृह्यसूत्र १/३/१

[26] तारानाथ, वाचस्पत्यम्, भाग - १

[27] साहित्यदर्पण

अर्थात् पुरावृत्त का कथन ही आख्यान है।

निरुक्तकार यास्क ने ऋग्वेद में वर्णित सरमा-पणि आदि संवादों को आख्यान की संज्ञा दी है।[28]

प्रस्थानत्रयी

भारतीय दर्शन परम्परा में प्रस्थानत्रयी का अपना महत्त्व है। प्रस्थानत्रयी के ज्ञाता को ही वेदान्तदर्शन के विद्वानों की श्रेणी में रखा जाता है। वेदान्तदर्शन के तथ्यों को पुष्ट करने हेतु प्रस्थानत्रयी के किसी भी ग्रन्थ से उद्धरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं क्योंकि इनके उद्धरणों में एक दूसरे के वाक्यों को सिद्ध करने की सामर्थ्य है। वेदान्त दर्शन के परिचायक ये तीन ग्रन्थ प्रस्थानत्रयी के अन्तर्गत आते हैं-

- **उपनिषद्** - श्रुतिप्रस्थान
- **गीता**- स्मृतिप्रस्थान
- **ब्रह्मसूत्र**- न्यायप्रस्थान

[28] https://hi.wikipedia.org/wiki/आख्यान

वेदान्त के रूप में उपनिषद्

जैसा कि इसके नाम से ही ज्ञात होता है, वेदों के अन्तिम भाग के रूप में वेदान्त जाना जाता है। वेद के अन्य भाग संहिता आदि जहाँ व्यक्ति को वैदिक कर्मकाण्ड से सम्बन्धित मन्त्र और उनकी व्याख्याओं को बताते हैं वहीं वेदान्त वेद के अन्तिम व चरम लक्ष्य को बताता है। वेद का अन्तिम भाग अर्थात् वेदान्त। वास्तव में यह जीव और ब्रह्म की एकता पर बल देता है। ब्रह्म की गूढ विशेषताओं से पाठक को अवगत कराना ही वेदान्त है और यह कार्य उपनिषद् करता है। वेदान्त को जानना है तो उपनिषद् को ही प्रमाण मानते हुए कहा गया है-

वेदान्तनामोपनिषत्प्रमाणम्।[29]

उपनिषदों में ही अनेक स्थानों पर उपनिषद् के लिए 'वेदान्त' शव्द का प्रयोग हुआ है। तिलेषु तैलवत् वेदे वेदान्त: सुप्रतिष्ठित:।[30] उपनिषदों में रहस्यविद्या या गूढविद्या के रूप में भी वेदान्त को माना गया है।

तद्वेदगूढविद्योपनिषत्सु गूढम्।[31]

---

[29] वेदान्तसार

[30] मुण्डकोपनिषद् १/९

[31] श्वेताश्वतरोपनिषद् ५/६

कुछ विद्वानों का मत है कि उपनिषदों का जो प्रतिपाद्य विषय है, उसका नाम 'वेदान्त' है अर्थात् यदि किसी ने वेदान्त को जान लिया है तो यह निश्चित नहीं है कि उसने उपनिषद् को भी जाना हो। कुछ उपनिषदों में भी उपनिषद ग्रन्थों में वर्णित विषय-वस्तु को उपनिषद् की संज्ञा दी गई है। आप्यायन्तु सर्वब्रह्मोपनिषद्।[32] इत्युपनिषत्।[33]

'वेदान्त' नामक ग्रन्थ के लेखक पॉल डायसन लिखते हैं कि वेदान्त का अर्थ 'रहस्य' अथवा 'गूढ निर्देश' है जो कि उपनिषदों की विषयवस्तु को बताते हैं। प्रो. मैक्समूलर के अनुसार वेदान्त का अर्थ एक विशेष प्रकार का सत्र है। एस. एन. दासगुप्ता भी इसी को मानते हैं। वह इसके लिए एक शब्द प्रयोग करते हैं 'रहस्य' जो कि गुरु द्वारा शिष्य को दिया जाता है।

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्ताय शमन्विताय।[34]

---

[32] केनोपनिषद् १.२

[33] तैत्तिरीयोपनिषद्३.९.१

[34] मुण्डकोपनिषद् १.२.१३

जबकि 'गूढ' शब्द रहस्य से अधिक उपयुक्त है। रहस्य ऐसे तथ्य की ओर इंगित करता है जो जाना न जा सकें। गूढ ऐसा विषय होता है जो जाना तो जा सकता है परन्तु सामान्य मनुष्य की पहुंच से परे है।[35]

अनेक विद्वानों ने यह माना कि उपनिषद् वैदिक शिक्षाओं का चरम है क्योंकि बाद के दार्शनिकों ने उपनिषदों में वेदों की उच्च शिक्षा को प्राप्त किया।[36] सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने वेदान्त का अर्थ 'वेदस्य अन्त:' के आधार पर वेद का अन्तिम भाग माना है। उनका मानना है कि वेदान्त वह है जो कि वैदिक शिक्षाओं का निचोड़ है। आज वेदान्त नाम से दर्शन की एक शाखा भारतीय दर्शन में उपलब्ध है वास्तव में वह उपनिषदों पर ही आधारित है। कालक्रम के अनुसार भी उपनिषद् वेदों के सभी भागों में सबसे बाद में आए, इसलिए भी इनका नाम वेदान्त पड़ा।

बी. आर. शर्मा अपनी पुस्तक 'The Concept of Atman in the Principal Upanisads' में वेदान्त से अभिप्राय वैदिक साहित्य के प्रमुख कथ्य और वेदों के अन्तिम प्रतिपाद्य को मानते हैं।[37]

---

[35] उभे ह्येवैषस्ते आत्मानं स्पृणुते य: एवम् वेद इत्युपनिषत्। - तैत्ति.

[36] History of Indian Literature, p. 349

[37] The Concept of Atman in the Principal Upanisads, p. 2

उपनिषदों की संख्या

उपनिषदों की संख्या के विषय में अनेक विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। मुक्तिकोपनिषद् में १०८ उपनिषदों का वर्णन प्राप्त होता है-

सर्वोपनिषदां मध्ये सारमष्टोत्तरं शतम्।

सकृच्छ्रवणमात्रेण सर्वघौघनिकृन्तनम्॥[38]

परन्तु, आचार्य शंकर का भाष्य १० उपनिषदों पर उपलब्ध है और ये ही प्रमुख उपनिषद् माने जाते हैं-

ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुण्डक-माण्डूक्य-तित्तिरि।

ऐतरेय च छान्दोग्यं वृहदारण्यको दश॥[39]

शंकर ने ब्रह्मसूत्र के भाष्य में कौषीतकि, जाबाल, महानारायण और पैंगल उपनिषदों की भी सहायता ली है परन्तु इन पर उनका भाष्य प्राप्त नहीं होता। श्वेताश्वतरोपनिषद् पर भी उनका भाष्य विवादास्पद है। शांकरभाष्य सहित उन्हीं उपनिषदों को प्रामाणिक माना जाता है जिन पर आनन्दगिरीस्वामी की टीका उपलब्ध

---

[38] मुक्तिकोपनिषद् १/३०-३१

[39] मुक्तिकोपनिषद् १/३०

है और वह उपरोक्त दस उपनिषदों पर ही है।[40] फिर भी, यहां पर शोधार्थी द्वारा कुल ११ उपनिषदों में उपलब्ध आख्यानों पर कार्य किया जाएगा।

'कल्याण' नामक पत्रिका के उपनिषदांक में २२० उपनिषदों का उल्लेख है। निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई से ११२ उपनिषदों का संग्रह प्रकाशित है। पॉल डायसन ने ६० उपनिषदों का अनुवाद किया और उनमें से उसने १४ को प्रमुख माना।[41] मैक्समूलर ने ११ प्रमुख उपनिषदों तथा मैत्रायणी उपनिषद् का अनुवाद किया। बाद में ए. ओ. ह्यूम ने इन्हीं १२ उपनिषदों के साथ कौषीतकि उपनिषद् को भी अनूदित किया।[42] राधाकृष्णन् ने इन १३ उपनिषदों के साथ-साथ सुबाल, जाबाल, पैंगल, कैवल्य और वज्रसूचिका उपनिषद् कुल १८ उपनिषदों को माना हैं। इनमें से १० महत्त्वपूर्ण माने हैं। आर. डी. रानाडे ने १३ उपनिषदों को माना हैं और उनको इस प्रकार विभाजित किया है-

- वृहदारण्यक, छान्दोग्य
- ईश, केन

---

[40] वैदिक, वेदवती, उपनिषद्युगीन संस्कृति, पृ. १६

[41] Paul Deussen, *Sixty Upaniṣads of the Vedas*, Vol. I and II, Delhi, 1980

[42] A. O. Hume, *The Thirteen Principal Upaniṣads*, New York, 1930

- ऐतरेय, तैत्तिरीय, कौषीतकि
- कठ, मुण्डक, श्वेताश्वतर
- प्रश्न, मैत्रेयी, माण्डूक्य

उपरोक्त वर्णन से यह ज्ञात होता है कि अधिकांश विद्वानों ने १०८ उपनिषद् स्वीकार किए हैं। इन सभी उपनिषदों का उल्लेख यहाँ पर आवश्यक है। इनमें से १० उपनिषद् प्रमुख इसलिए हैं क्योंकि वे किसी भी मत या सम्प्रदाय से सम्बन्धित नहीं हैं। इसीलिए इनको 'दशोपनिषद्' की श्रेणी में रखा गया है। शेष उपनिषद् शैव, शाक्त, वैष्णव, योग और सन्यास आदि से सम्बन्धित है जो इस प्रकार हैं-

१०८ उपनिषदों का विभाजन

दशोपनिषद्

1. ईश यजुर्वेद
2. केन सामवेद
3. कठ यजुर्वेद
4. प्रश्न अथर्ववेद
5. मुण्डक अथर्ववेद

6. माण्डूक्य अथर्ववेद

7. तैत्तिरीय यजुर्वेद

8. ऐतरेय ऋग्वेद

9. छान्दोग्य सामवेद

10. बृहदारण्यक यजुर्वेद

सामान्य वेदान्त उपनिषद्

11. श्वेताश्वतर यजुर्वेद

12. गर्भ यजुर्वेद

13. मैत्रायणी सामवेद

14. कौषीतकि ऋग्वेद

15. सुबाल यजुर्वेद

16. मन्त्रिका यजुर्वेद

17. सर्वसार यजुर्वेद

18. निरालम्ब यजुर्वेद

19. शुक्ररहस्य यजुर्वेद

20. वज्रसूचि सामवेद

21. आत्मबोध ऋग्वेद

22. स्कन्द यजुर्वेद

23. मुद्गल ऋग्वेद

24. पैंगल यजुर्वेद

25. महत् सामवेद

26. शारीरक यजुर्वेद

27. एकाक्षर यजुर्वेद

28. अन्नपूर्णा अथर्ववेद

29. सूर्य अथर्ववेद

30. अक्षि यजुर्वेद

31. अध्यात्म यजुर्वेद

32. सावित्री सामवेद

33. आत्म‘ अथर्ववेद

34. प्राणग्निहोत्र यजुर्वेद

35. मुक्तिक यजुर्वेद

शैव उपनिषद्

36. कैवल्य यजुर्वेद

37. अथर्वाशिर अथर्ववेद

38. अथर्वाशिखा अथर्ववेद

39. बृहज्जाबाल अथर्ववेद

40. कालाग्निरुद्र यजुर्वेद

41. दक्षिणामूर्ति यजुर्वेद

42. सरभ अथर्ववेद

43. अक्षमाला ऋग्वेद

44. रुद्रध्रुदय सामवेद

45. भस्मजाबाल अथर्ववेद

46. रुद्राक्षजाबाल सामवेद

47. गणपति अथर्ववेद

48. पञ्चब्रह्म यजुर्वेद

49. जाबालि सामवेद

शाक्त उपनिषद्

50. सीता अथर्ववेद

51. त्रिपुरतापिनी अथर्ववेद

52. देवी अथर्ववेद

53. त्रिपुर ऋग्वेद

54. भावना अथर्ववेद

55. सौभाग्यलक्ष्मी ऋग्वेद

56. सरस्वतीरहस्य यजुर्वेद

57. बह्वृची ऋग्वेद

वैष्णव उपनिषद्

58. नारायण यजुर्वेद

59. नृसिंहतापिनी अथर्ववेद

60. त्रिपादविभूतिमहानारायण अथर्ववेद

61. रामरहस्य अथर्ववेद

62. रामतापिनी अथर्ववेद

63. वासुदेव सामवेद

64. अव्यक्त सामवेद

65. तारसार यजुर्वेद

66. गोपालतापिनी अथर्ववेद

67. कृष्ण अथर्ववेद

68. ह्यग्रीव अथर्ववेद

69. दत्तात्रेय अथर्ववेद

70. गरुड अथर्ववेद

71. कालिसन्तरण यजुर्वेद

सन्यास उपनिषद्

72. ब्रह्म यजुर्वेद

73. जाबाल यजुर्वेद

74. आरुणिक सामवेद

75. परमहंस यजुर्वेद

76. मैत्रेयी सामवेद

77. निर्वाण ऋग्वेद

78. नारद परिव्राजक अथर्ववेद

79. भिक्षुक यजुर्वेद

80. तुरीयातीत यजुर्वेद

81. सन्यास सामवेद

82. परमहंसपरिव्राजक अथर्ववेद

83. कुण्डिका सामवेद

84. परब्रह्म अथर्ववेद

85. अवधूत यजुर्वेद

86. कथारुद्र यजुर्वेद

87. याज्ञवल्क्य यजुर्वेद

88. सत्यायनी यजुर्वेद

योग उपनिषद्

89. अद्वयतारक यजुर्वेद

90. त्रिशिखीब्राह्मण यजुर्वेद

91. ब्रह्मविद्या यजुर्वेद

92. यागतत्त्व यजुर्वेद

93. अमृतानन्द यजुर्वेद

94. दर्शन सामवेद

95. मण्डलब्राह्मण यजुर्वेद

96. योगशिख यजुर्वेद

97. अमृतबिन्दु यजुर्वेद

98. ध्यानबिन्दु यजुर्वेद

99. महावाक्य अथर्ववेद

100. वराह यजुर्वेद

101. क्षुरिका यजुर्वेद

102. पाशुपतब्रह्म अथर्ववेद

103. योगकुण्डली यजुर्वेद

104. शाण्डिल्य अथर्ववेद

105. तेजोबिन्दु यजुर्वेद

106. नादबिन्दु ऋग्वेद

107. योगचूडामणि सामवेद

108. हंस यजुर्वेद

उपनिषदों का समय

मानव सभ्यता में उपनिषद् –परम्परा बहुत प्राचीन है। विद्वानों का एक बड़ा समूह वैदिक साहित्य का समय ६०० ई. पू. से २०० ई. पू. तक स्वीकार करता है।[43] राधाकृष्णन् कार्ल जैस्पर्स के कथन को दोहराते हैं जो उपनिषदों का समय ८०० ई. पू. से ३०० ई. पू. तक स्वीकार करते हैं जब तीन देशों भारत, चीन व यूनान में ज्ञान व दर्शन के क्षेत्र में एक अभूतपूर्व उदय हुआ।[44] रानाडे प्रमुख उपनिषदों का समय १२०० ई. पू. से ६०० ई.पू. तक मानते हैं और बाद के उपनिषदों का उदय बौद्ध धर्म के उत्थान

[43] *Life in the Upaniṣads*, p. 56

[44] The Principal Upanisads, p. 21

के समय का मानते हैं।[45] इसके विपरीत मैकडोनाल्ड उपनिषदों का समय ६०० ई.पू. के बाद का ही मानते हैं जब से बौद्ध धर्म के महत्त्वपूर्ण विचारों का उदय हुआ।[46] विण्टरनित्स मैत्रायणी और माण्डूक्य उपनिषदों को छोड़कर सभी प्रमुख उपनिषदों का समय बौद्ध-धर्म से पूर्व में मानते हैं।[47] ह्यूम उपनिषदों का समय बुद्ध से पूर्व ६०० ई.पू. का मानते हैं।[48] जबकि ओलिवेल ने उपनिषदों का समय ७०० ई. पू. से ६०० ई.पू. तक माना है।[49]

इन विभिन्न मतों से यह ज्ञात होता है कि उपनिषदों का सही समय विवादस्पद है। कुछ विद्वान् उनको बुद्ध से पूर्व का मानते हैं तो कुछ बुद्ध से बाद का। वास्तव में उपनिषद् किसी विशेष सम्प्रदाय या किसी विशेष समय से सम्बन्धित नहीं हैं, फिर भी, विद्वानों का एक बड़ा समूह वर्तमान उपनिषदों का समय ५००ई. पू. से ७०० ई.पू. का मानता है जिसमें बृहदारण्यक तथा श्वेताश्वतर बुद्ध के पूर्व तथा शेष सभी बुद्ध के बाद के माने जाते हैं।

---

[45] *A Constructive Survey of the Upaniṣadic Philosophy*, p. 12

[46] संस्कृत साहित्य का उदय, पृ. १९१

[47] Winternitz, *Some Problems of Indian Literature*, p. 19-20

[48] Hume, *The Thirteen Principal Upaniṣads*, p. 12-13

[49] Patrick Olivelle, *The Early Upaniṣads*, p. 12-13

प्रमुख उपनिषद् और उनका वेदों से सम्बन्ध

सभी १०८ उपनिषद् किसी न किसी वेद से सम्बन्धित हैं। जिस प्रकार चारों वेदों के वर्ण्य विषय अलग अलग हैं उसी प्रकार उन-उन से सम्बन्धित उपनिषदों के विषय भी अलग अलग हैं। विभिन्न उपनिषद् अपने मन्त्रों से अनेक प्रकार की शिक्षाऐं देते हैं। कुछ उपनिषद् एक ही वेद की अलग अलग शाखाओं से भी सम्बन्धित हैं जैसे शुक्ल यजुर्वेद तथा कृष्ण यजुर्वेद। प्रमुख उपनिषदों व उनके वेदों का विवरण इस प्रकार है-

ऋग्वेद

ऐतरेय

यजुर्वेद (शुक्ल)

बृहदारण्यकोपनिषद्

ईशोपनिषद्

श्वेताश्वतरोपनिषद्

यजुर्वेद (कृष्ण)

तैत्तिरीयोपनिषद्

कठोपनिषद्

सामवेद

केनोपनिषद्

छान्दोग्योपनिषद्

अथर्ववेद

मुण्डकोपनिषद्

माण्डूक्योपनिषद्

प्रश्नोपनिषद्

प्रमुख उपनिषदों का संक्षिप्त परिचय

ईशोपनिषद

यह प्रमुख उपनिषदो में प्रथम है। इसमें कुल १८ मन्त्र हैं। जिनमें परमेश्वर की उपासना की गयी है। साथ ही अनेक प्रकार की नैतिक शिक्षाएं भी दी गयी हैं। इस उपनिषद में कोई आख्यान नहीं है।

केनोपनिषद

इस उपनिषद में वाक् आदि शक्तियो के पीछे कार्य करने वाली प्ररेक शक्ति का वर्णन हैं। ज्ञानी पुरुष की अहंकार शून्यता को अज्ञानता का नाम दिया गया है। उमा-हैमवती नामक आख्यान में इन्द्र आदि देवताओ के अहंकार दूर करने का वर्णन है।

कठोपनिषद

इसका प्रारम्भ सुप्रसिद्ध यम नचिकेता के आख्यान से होता है। जिसमें यम के पास जाकर बालक नचिकेता तीन वरों में से एक मृत्यु के विषय में जानने की इच्छा करता है तथा यम उसको अनेक प्रकार के प्रलोभन देने में असफल होने के बाद मृत्यु के विषय में बताते हैं। जिसको जानकर बालक नचिकेता सत्य ज्ञान को प्राप्त कर लेता है।

प्रश्नोपनिषद

यह उपनिषद अनेक प्रश्नों पर आधारित है जिसमें सुकेशा आदि ऋषि महर्षि पिप्पलाद के पास जाकर सृष्टि के आरम्भ से लेकर वर्तमान के विषय में अनेक प्रकार के प्रश्न करते हैं तथा महर्षि उनका विस्तार से उत्तर देते हैं।

मुण्डकोपनिषद

इस उपनिषद में परा तथा अपरा दो प्रकार की विद्याओं का वर्णन हैं। आगे दो पक्षियो के माध्यम से जीवात्मा तथा परमात्मा के कार्य को बताया हैं। साथ ही सत्य आदि की जय और असत्य की पराजय का वर्णन हैं।

माण्डूक्योपनिषद्

यह प्रमुख उपनिषदों में सबसे छोटा हैं। इसमें कुल १२ मन्त्र हैं। जिनमें औऊम् की महिमा का वर्णन हैं। साथ ही जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्त तथा तुरीया अवस्था का वर्णन हैं।

तैत्तिरीयोपनिषद्

इसके प्रथम वल्ली शीक्षावल्ली में गुरु द्वारा शिष्य को विद्योपरान्त किए जाने वाले उपदेश का वर्णन है।

ब्रह्मवल्ली में पञ्चकोशों (अन्नमय, प्राणमय, विज्ञानमय, मनोमय तथा आनन्दमय) का वर्णन है।

भृगुवल्ली में वरुण ऋषि अपने पुत्र भृगु को अन्न, प्राण व विज्ञान के विषय में उपदेश करते हैं।

ऐतरेयोपनिषद्

इसमें प्रारम्भ में परमात्मा के सृष्टिविषयक संकल्प का वर्णन है। आगे अन्न की महिमा का वर्णन है। पिता द्वारा गर्भ की स्थापना तथा माता द्वारा गर्भ में उसके पालन पोषण का भी वर्णन है। मन की अनेक प्रकार की शक्तियों को परमात्मा की ही शक्तियाँ बताया गया है।

छान्दोग्योपनिषद्

इसमें प्रथम पाँच अध्याय उपासना काण्ड तथा अन्तिम तीन अध्याय ज्ञानकाण्ड के नाम से जाने जाते है। षष्ठ अध्याय के प्रारम्भ में आरुणि ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु को मिट्टी की सत्यता का उपदेश करते हैं तथा बताते हैं कि उस एक परमात्मा को जान लेने

से सभी प्रकार का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। आगे व्यक्तियों की दो प्रकार की मानसिकताओं भूमा व अल्प का वर्णन है।

वृहदारण्यकोपनिषद्

इसमें अनेक प्रकार के संवाद् हैं। जैसे याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी संवाद, जनक-याज्ञवल्क्य संवाद, याज्ञवल्क्य-कहोल संवाद, याज्ञवल्क्य-गार्गी संवाद आदि हैं इनमें याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी संवाद प्रसिद्ध है जिसमें महर्षि याज्ञवल्क्य का अपनी विदुषी पत्नी मैत्रेयी के साथ अनेक दार्शनिक विषयों पर संवाद होता है।

श्वेताश्वतरोपनिषद्

इस उपनिषद् में दार्शनिक विषयों का वर्णन है जिनमें जगत् के कारण, स्थिति तथा परिणाम आदि का विवेचन है। विद्या तथा अविद्या की परिभाषा के साथ साथ प्राणायाम आदि योगसाधनों का भी वर्णन है।

किसी भी शोधकार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व उसकी एक रूपरेखा को तैयार करना आवश्यक होता है और उससे भी पूर्व यह महत्वपूर्ण होता है कि शोधकार्य हेतु जिन ग्रन्थों को शोधार्थी के द्वारा आधार माना गया है, उनके विषय में एक परिचयात्मक ज्ञान प्रस्तुत करना। ग्रन्थ के ऐतिहासिक परिदृश्य से आरम्भ करके उसके अर्थ के विषय में अनेक विद्वानों के द्वारा दी गई परिभाषाओं का अवलोकन करते हुए

उसके अध्ययन क्षेत्र का परिचय प्रस्तुत करने के पश्चात् शोधार्थी को यह उचित है कि आगे उसके ऊपर अपना शोध करे।

प्रथम अध्याय

प्रमुख उपनिषदों के आख्यानों का सामाजिक स्वरूप

उपनिषदों में अनेक ऐसे आख्यान वर्णित हैं जो सामाजिक सन्देश को समाहित करके एक स्वस्थ समाज की संकल्पना पर बल देते हैं । ज्ञानकाण्ड होने के कारण

उपनिषद् सभी प्रकार के तत्त्वों को स्पर्श करते हुए एक-एक पर अपना मन्तव्य प्रस्तुत करते हैं। एक स्वस्थ समाज की स्थापना के लिए आवश्यक है कि उसमें रहने वाले लोग सात्त्विक विचारों से युक्त हों, वे एक-दूसरे के कल्याण में अपना हित समझते हों, परस्पर ईर्ष्या व द्वेष से रहित हों, एक- दूसरे से स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा करते हों, अपने से बड़ों का सम्मान करते हों, छोटों के प्रति स्नेह रखते हों और जब कभी असमंजस की स्थिति में फंस जाएं तो धर्मयुक्त पक्ष का ही समर्थन करें। अत: इस प्रकार के विचारों को प्रदान करने वाले औपनिषदिक आख्यान आगे प्रस्तुत हैं

१.१ यम-नचिकेता आख्यान (कठोपनिषद्)

कठोपनिषद् में वर्णित यम-नचिकेता का आख्यान एक पिता व पुत्र के मध्य वार्तालाप से प्रारम्भ होता है[50] जिसमें गौतमवंशीय महर्षि उद्दालक स्वयं विश्वजित् यज्ञ

[50] उशन् ह वै वाजश्रवस: सर्ववेदसं ददौ। तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस। (कठोपनिषद्-१/१)।

करके अपना धन ब्राह्मणों को दान में दे देते हैं। इसी क्रम में जिस समय ब्राह्मणों को दक्षिणा के रूप में देने के लिए ऐसी गायें ले जाई जाने लगीं जिन्होंने दूध ही देना बन्द कर दिया था और शास्त्रानुसार ऐसी नष्टेन्द्रिय गाय दान में देना उचित नहीं है। यह देखकर उद्दालक के बुद्धिमान् पुत्र नचिकेता ने कहा-

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रिया।

अनन्दा नाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता ददत्॥[51]

जिन गायों में न तो झुककर पानी पीने की शक्ति है, न ही मुख में घास को चबाने के लिए दाँत बचे हैं तथा न ही इनके थनों में दूध देने की सामर्थ्य बची है ऐसी गायों को दान में किसी को भी देना उचित नहीं है।[52] इस प्रकार का दान करने से दाता को वे नीच योनि और नरकादि लोक प्राप्त होते है जिनमें सुख की न्यून भी मात्रा नहीं होती है अत: ऐसे दान से पिता जी क्या सुख पायेंगे?

आगे नचिकेता यह भी विचार करता है कि उपयोगी गायों को मेंरे लिए रख लिया गया है और जब पिताजी के द्वारा यज्ञ के उपरान्त सर्वस्व दान किया जाना है तो

---

[51] कठोपनिषद्- १/३

[52] तँह कुमारँ सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाऽऽविवेश सोऽमन्यत॥ कठोपनिषद्-१/२

उसमें तो मैं भी आता हूँ अत: अनुपयोगी गायों के दान से अधिक उचित तो मैं स्वयं का दान कर दूँ तो सही होगा।[53] इस प्रकार सोचकर नचिकेता ने अपने पिताजी को ऐसा कार्य करने से रोका और बार-बार उनसे पूछा कि आप मेरा दान किसे करेंगे तो खिन्न होकर पिताजी ने बोल ही दिया कि मैं तुझे मृत्यु के देवता यमराज को सौंप दूँगा।

मृत्यवे त्वां ददामीति॥[54]

यह सुनकर नचिकेता विनम्र होकर बोला कि आप अपने शोक का त्याग करके मुझे मृत्यु (यमराज) के पास जाने की अनुमति प्रदान कीजिए। इस प्रकार पिता से आशीर्वाद पाकर नचिकेता यमराज के घर पर पहुँच गया। उस समय यमराज घर पर नहीं थे और उनकी प्रतीक्षा में नचिकेता तीन दिन तक बिना अन्न व जल के रहा। यमराज से मिलने के लिए इस प्रकार की आतुरता का वर्णन नचिकेता के अतिरिक्त अन्य किसी मानव में तो नहीं प्राप्त होता इसी कारण बालक नचिकेता का यह आख्यान उपनिषदों में प्रसिद्ध है। नचिकेता की यह उत्सुकता देखकर यमराज की पत्नी भी आश्चर्यचकित हो गई और यमराज के लौटते ही उनसे बोली-

---

[53] बहूनामेंमि प्रथमं बहूनामेंमि मध्यम:।

किँ स्विद्यमस्य कर्तव्यं यन्मयाद्य करिष्यति॥ (कठोपनिषद्- १/५)॥

[54] कठोपनिषद्- १/४

वैश्वानर: प्रविश्त्यतिथि: ब्राह्मणो गृहान्।

तस्यैताँ शान्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम्॥[55]

साक्षात् अग्नि ही तेज रूप में परिवर्तित होकर जब प्रकट होती है तब ब्राह्मण अतिथि के रूप में किसी गृहस्थ के घर पर प्रवेश करते हैं और एक बालक हमारे घर पर पिछले तीन दिनों से आपकी प्रतीक्षा में अनशन किए बैठा है अब उसके अतिथिस्वरूप सत्कार का समय आ गया है।

यमराज ने उस ब्राह्मण बालक का उचित अभिवादन व सत्कार करने के बाद विनयपूर्वक नचिकेता से तीन दिन के उपवास के बदले तीन वरदान माँगने के लिए कहा तो उन तीन वरों में से नचिकेता ने प्रथम वर के रूप में पितृ-परितोष की याचना की -

शान्तसंकल्प: सुमना यथा स्स्याद्वीतमन्युर्गौतमो माभि मृत्यो।

त्वत्प्रसृष्टं मभिवदेत्प्रतीत एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे॥[56]

---

[55] कठोपनिषद्. १/७

[56] कठोपनिषद् १/१०

यमराज ने भी नचिकेता के इस वरदान को सहर्ष स्वीकार करते हुए कहा कि मुझसे भेंट करके तथा मृत्यु के मुख से मुक्त हुआ तुमको देखकर पिता पूर्व की भांति तुम्हें देखकर पुत्रवत् प्रेम करेंगे और उनका तुम्हारे प्रति क्रोध स्वत: ही शान्त हो जाएगा -

यथा पुरस्ताद् भविता प्रतीत औद्दालक्किरारुणिर्मत्प्रसृष्ट:।

सुखं रात्री: शयिता वीतमन्युस्त्वां ददृशिवान्मृत्युमुखात्प्रमुक्तम्॥[57]

यमराज द्वारा नचिकेता को प्रदान किया गया यह वर इस ओर संकेत करता है कि नचिकेता ने पिता-पुत्र के सम्बन्ध को किसी भी परिस्थिति में विच्छेद होने से बचाया है। यदि नचिकेता चाहता तो वह किसी अन्य जिज्ञासा को प्रथम वरदान के रूप में मांग सकता था। परन्तु उत्तम प्रकृति के मानव का यह स्वभाव होता है कि वह किसी भी समस्या के उत्पन्न होने पर सर्वप्रथम उसके कारण पर विचार करके तत्पश्चात् उसके निदान की ओर अग्रसर होता है। इसी प्रकार नचिकेता ने यमराज से अपने रुष्ट हुए पिता के शान्त होने का वरदान माँगा।

[57] कठोपनिषद्. १/११

१.२ पिप्पलाद-कबन्धी आख्यान (प्रश्नोपनिषद्)

प्रश्नोपनिषद् में सुकेशा आदि ऋषि महर्षि पिप्पलाद के पास अनेक सामाजिक व दार्शनिक प्रश्नों के उत्तर के लिए जाते हैं।

उनमें से कबन्धी[58] नामक ऋषि महर्षि पिप्पलाद से प्रजा की उत्पत्ति के विषय में प्रश्न करते हैं[59] तो पिप्पलाद ऋषि उनको प्रजापति के विषय में बताते हैं कि दिन व रात का जोड़ा ही प्रजापति है –

अहोरात्रो ह् वै प्रजापति:।[60]

इसके अनन्तर पिप्पलाद ऋषि कबन्धी आदि ऋषियों को जो सत्य बताते हैं वह समाज में रहने वाले प्रत्येक गृहस्थ के लिए जानने योग्य है। ऋषि प्राण व रयि का उचित विभाजन करते हुए बताते हैं कि दिन ही प्राण है और रात्रि ही रयि है[61] अर्थात् दिन में सूर्य की उपस्थिति में मानव के अन्दर प्राण का संचार अधिक मात्रा में होता है। उस समय मनुष्य अपने शरीर के माध्यम से अधिकाधिक कार्य करके अपनी ऊर्जा को

---

[58] कात्यायन: कबन्धी (कत्य ऋषि के प्रपौत्र) - प्रश्नोपनिषद्. १/३

[59] भगवन् कुतो ह वा इमा प्रजा प्रजायन्त इति। - प्रश्नोपनिषद् १/३

[60] प्रश्नोपनिषद् १/१३

[61] अहरेव प्राणो रात्रिरेव रयि। - प्रश्नोपनिषद् १/१३

बढा सकता है। परन्तु ऋषि यहाँ पर उन लोगों को सावधान करते हैं जो दिन में अपने प्राणों का संरक्षण न करके उनको क्षीण करने में लगे रहते है। ऋषि उपनिषद् में कहते हैं-

एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते।[62]

ऋषि कहते हैं कि जो लोग दिन के समय स्त्री-सहवास में लिप्त रहते हैं वे वास्तव में अपने प्राणों को क्षीण करते हैं। वे अपने गृहस्थ जीवन में अपनाये जाने वाले नियम से विचलित होकर अपने अमूल्य जीवन को नष्ट करने का प्रयास करते हैं। स्त्री–पुरुष के सहवास के उचित समय के विषय में आगे ऋषि कहते हैं-

ब्रह्मचर्यमेंव तद् यद्रात्रौ रत्या संयुज्यन्ते।[63]

शास्त्र के अनुसार रात्रि ही स्त्री-पुरुष के द्वारा सहवास करने लिए उचित बतायी गई है क्योंकि उस समय प्राण रति-क्रिया के लिए उपयुक्त होते हैं। जो पुरुष शास्त्रानुसार नियमानुकूल स्त्री–प्रसंग करते हैं वे ब्रह्मचारी कहलाने के योग्य ही होते हैं और गृहस्थ जीवन में रहकर भी ब्रह्मचारी का जीवन जी सकते हैं। शास्त्रों में केवल सन्तान की

---

[62] प्रश्नोपनिषद् १/१३

[63] प्रश्नोपनिषद् १/१३

इच्छा से किया गया स्त्री-सहवास ही उचित माना गया है। जो सहवास उचित समय पर किया जाता है वही ब्रह्मचर्य की श्रेणी में आ सकता है।[64]

१.३ शौनक – अंगिरा संवाद (मुण्डकोपनिषद्)

मुण्डकोपनिषद् में जीवात्मा व परमात्मा के मध्य का सम्बन्ध दो सखाओं के माध्यम से समझाया गया है और उनकी भिन्न-भिन्न क्रियाओं को इस प्रकार बताया गया है-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।

तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥[65]

यहाँ पर वृक्ष शरीर का पर्याय है जिस पर दो पक्षी बैठे हुए हैं। उनमें से एक, जो वृक्ष पर लगे हुए फल का आस्वादन करता है वह जीवात्मा का प्रतीक है और जो दूसरा, जो फल न खाकर केवल पहले पक्षी को देखता रहता है, वहा परमात्मा का प्रतीक है। जीवात्मा और परमात्मा सदैव साथ रहने वाले हैं जो शरीर रूपी वृक्ष पर आजीवन वास करते हैं। इनमें से एक जीवात्मा रूपी पक्षी जीवन में आने वाले प्रारब्धरूप सुख-दु:खों

---

[64] ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरत: सदा।

पर्ववर्ज व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया॥ मनु. ३.४५

[65] मुण्डकोपनिषद्. ३/१/१

तथा कर्मफलों को भोगता रहता है तथा दूसरा परमात्मा रूपी पक्षी इन सुख-दु:खों व कर्मफलों से किसी भी प्रकार सम्बन्धित न होकर केवल जीवात्मा के क्रियाकलापों को देखता रहता है। पहला पक्षी एक सामाजिक मानव की भाँति जीवन में आने वाले हर्ष व शोक, उतार व चढाव से युक्त होता है और जब वह परमात्मा रूपी पक्षी को पा लेता है तो इन सभी प्रकार के शोकों से रहित हो जाता है।[66]

इसके पश्चात् अङिरा ऋषि शौनक को मनुष्य द्वारा किए जाने वाले कर्मों के विषय में बताते हुए कहते हैं कि जो लोग इष्ट और सकाम कर्मों को करना ही परमतत्त्व की प्राप्ति का साधन मानते हैं और सोचते हैं कि ऐसे सांसारिक काम करने से उनको परमात्मा की प्राप्ति हो जाएगी, वह उचित नहीं है। वास्तव में उपनिषद् के ऋषि ऐसे कर्मों को प्रेय को देने वाले मानते हैं श्रेय को देने वाले नहीं। प्रेय को प्राप्त करने वाले लोग सांसरिक सुख को पा लेते हैं परन्तु स्वर्ग के उच्च स्थान को भोगने के बाद भी पुन: जन्म लेकर इस सांसारिक प्रपञ्च में प्रवेश कर जाते हैं।

इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढा:।

नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति॥[67]

---

[66] मुण्डकोपनिषद् ३/१/२

[67] मुण्डकोपनिषद् १/२/१०

ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक

मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान्॥[68]

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालम्।

क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति॥[69]

आगे ऋषि बताते हैं कि जो लोग अपने मन व इन्द्रियों को वश में करके, सांसारिक सुख को देने वाले कर्मों से ऊपर उठकर, संयम व श्रद्धा से युक्त होकर श्रेय की इच्छा रखते हैं, वे इस जन्म और मरण के प्रपञ्च से दूर होकर उस अव्यय परमात्मा की स्थिति को प्राप्त करते हैं। ऐसे लोग रजोगुण व तमोगुण के विकारों से सर्वथा उठकर सत्त्व भाव में स्थिर हो जाते हैं।

तप: श्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्यां चरन्त:।

सूर्यद्वारेण ते विरजा: प्रयान्ति यत्रामृत: स पुरुषो ह्यव्ययात्मा॥[70]

---

[68] गीता ९.२०

[69] गीता ९.२१

[70] मुण्डकोपनिषद् १/२/११

ऋषि यह स्पष्ट करते हैं कि 'कृत' से 'अकृत' की प्राप्ति नहीं हो सकती अर्थात् किए जाने वाले सांसारिक कर्मों से उस स्वत: सिद्ध परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती। इन कर्मों से केवल मात्र सांसारिक भोग व सुख ही प्राप्त होता है। उस स्वत: सिद्ध परमात्मा की प्राप्ति के लिए कर्मों की उचित प्रकार परीक्षा करके (वे अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति कराने वाले हैं या नहीं) से विरक्त होकर समित्पाणि होकर गुरु की शरण में जाना आवश्यक है। गुरु ही वेदादि शास्त्रों के रहस्य को जानते हैं और वह अपनी तपस्या से परब्रह्म परमात्मा में स्थित होते हैं।

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो

निर्वेदमायान्नास्त्यकृत: कृतेन।

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेंवाभिगच्छेत्

समित्पाणि श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥[71]

ऐसी स्थिति में जब शिष्य गुरु के पास जाता है तो गुरु उस शिष्य के लिए क्या करे? इस विषय में ऋषि बताते हैं कि ऐसा शिष्य जो सांसारिक कर्मों के भोग से ऊपर उठ चुका है, जिसने अपने मन व इन्द्रियों को वश में कर लिया है, जो परमात्मा की प्राप्ति के लिए मन व आत्मा से तैयार हो चुका है तथा जिसके चित्त में किसी भी प्रकार

[71] मुण्डकोपनिषद् १/२/१२

के विकार शेष न बचे हों, उसको गुरु अपने सान्निध्य में रखकर परब्रह्म परमात्मा के विषय में बताए और ब्रह्मविद्या का भली-भाँति उपदेश करे।

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्

प्रशान्तचित्ताय शमन्विताय।

येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं

प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्॥[72]

एक घड़े में जल डालने के लिए यह आवश्यक है कि वह पूर्णतया खाली हो। जब तक उसके अन्दर कोई भी पदार्थ रहेगा तब तक हम उसमें जल नहीं डाल सकते। यदि उसमें जल डाल भी दिया जाए तो वह डाला हुआ जल स्वच्छ नहीं रहेगा। अत: उसे पहले खाली किया जाना आवश्यक है। इसी प्रकार यदि किसी शिष्य को आत्मा से सम्बन्धित ज्ञान प्रदान करना है तो गुरु को यह अभीष्ट है कि वह उससे पूर्व उसके द्वारा अर्जित किए गए मिथ्या ज्ञान को दूर करे और उसके मन में उपस्थित भ्रान्तियों को दूर करे। ऐसा करने से निर्मल मन वाला वह शिष्य आने वाले ज्ञान को सद्य: ही अर्जित कर लेगा और जीवन में उसको आत्मसात् करेगा।

---

[72] मुण्डकोपनिषद्. १/२/१३

१.४ आचार्य – स्नातक आख्यान (तैत्तिरीयोपनिषद्)

तैत्तिरीयोपनिषद् की शिक्षावल्ली में आचार्य द्वारा स्नातक हुए ब्रह्मचारी को गृहस्थाश्रम में प्रवेश से पूर्व अनेक प्रकार की शिक्षाओं का वर्णन किया गया है। ब्रह्मचर्याश्रम के उपरान्त व्यक्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है और गृहस्थाश्रम ही आश्रम-चतुष्टय[73] में सर्वोपरि है अन्य सभी आश्रम (ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और सन्यास) गृहस्थ पर ही आश्रित होते हैं। इसीलिए ऐसे महत्त्वपूर्ण आश्रम में प्रवेश से पूर्व शिक्षित स्नातक को आचार्य उपदेश करते हुए कहते हैं –

सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सी। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्याप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। देवपित्तृकार्याभ्यां प्रमदितव्यम्।[74]

अर्थात् शिक्षा की समाप्ति होने पर आचार्य को उचित दक्षिणा देकर ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे और सन्तानोत्पत्ति से अपनी वंश–परम्परा को बढाए। जीवन में सत्य का पालन करना चाहिए। सत्य ही मनुष्य को स्वर्ग का मार्ग दिखाता है।[75] जिस

---

[73] यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः।

तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते चतुराश्रमाः॥ - मनु. ३.७७

[74] तैत्तिरीयोपनिषद् १/११/१

[75] सत्यं स्वर्गस्य सोपानम्। महाभारत

लक्ष्य की प्राप्ति मनुष्य सत्य से कर सकता है वह असत्य के बल पर कभी भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। धर्म का आचरण करना चाहिए। धर्म ही सर्वोपरि है। यही मानव को उसके परम लक्ष्य को प्राप्त कराता है। मानव के लिए अपने जीवन में धर्म को जानना ही अभीष्ट है। धर्म को जानकर उसके मार्ग पर चलने से ही जीवन सफलता को प्राप्त करता है। जीवन में सदैव स्वाध्याय व अभ्यास से जुडकर रहना चाहिए। स्वाध्याय मानव में अच्छी प्रवृत्तियों को विकसित करता है तथा अभ्यास उन विकसित प्रवृत्तियों को दृढता प्रदान करता है।[76] योगसूत्र भी अभ्यास को महत्त्वपूर्ण मानता है। अत: दोनों ही आवश्यक हैं। किसी भी कार्य में कुशलता प्राप्त करने का यत्न करना चाहिए जिससे उस कार्य पर अपना अधिकार हो जाता है। जीवन में उन्नति के साधनों का प्रयोग करने के लिए तत्पर रहना चाहिए।

आगे ऋषि कहते हैं कि मानव यदि देवता का साक्षात्कार करना चाहता है तो उसको माता, पिता, आचार्य तथा अतिथि को देवता के रूप में देखना चाहिए। जीवन में जो उचित कर्म श्रेय को देने वाले हैं तथा जिनसे परमज्ञान की प्राप्ति सम्भव हो ऐसे ही कर्मों को करना चाहिए अन्य को नहीं।

---

[76] अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोध:। योगसूत्र १.१२

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि।[77]

माता, पिता, आचार्य तथा अतिथि साक्षात् रूप से देवता होते हैं। इन सभी की सेवा गृहस्थ व्यक्ति को सामर्थ्यानुसार करनी चाहिए। इनको प्रसन्न करना ही अप्रत्यक्ष रूप से देवताओं को प्रसन्न करना है। साथ ही व्यक्ति को अकरणीय व दुष्ट कृत्यों से बचना चाहिए। यदा कदा मानव के मस्तिष्क में अनेक प्रकार के शुभ व अशुभ विचार आते हैं और वह उनको करने हेतु तैयार भी हो जाता है, परन्तु मन में उसके दु:खद परिणामों का चिन्तन करते हुए व्यक्ति को उनसे बचना चाहिए व अच्छे कर्म करने चाहिएं।

१.५ भृगु – वारुणि आख्यान (तैत्तिरीयोपनिषद्)

तैत्तिरीयोपनिषद् की 'भृगुवल्ली' में वरुण ऋषि ने अपने पुत्र भृगु को अन्न आदि पाँच कोशों के विषय में उपदेश दिया है। भृगु के नाम पर ही इसका नाम भृगुवल्ली पडा है। जब वरुण अपने पिता भृगु के पास गया तो उनसे विनम्रतापूर्वक ब्रह्म का उपदेश करने के लिए कहने लगा। तब वरुण ने अन्न से अपना उपदेश आरम्भ किया। वरुण ने

[77] तैत्तिरीयोपनिषद् १/११/२

उपनिषद् में अन्न के लिए जो कहा वह सार्वकालिक व सार्वभौम सत्य है। वरुण कहते हैं-

अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्।[78]

अन्न ही ब्रह्म है अर्थात् अन्न को ब्रह्म का ही रूप समझना चाहिए। अन्न में ब्रह्मनिष्ठ गुण परिलक्षित होते हैं। यह चेतन है, इसमें एकत्व से बहुत्व को प्राप्त करने की क्षमता होती है, यह उपभोग करने वाले को शक्ति प्रदान करता है। यहाँ तक कि अन्न से ही जीव भौतिक संसार में उत्पन्न होते हैं, अन्न की सहायता से ही अपने जीवन-यापन में समर्थ होते हैं तथा अन्त में उनका शरीर अन्न को ही प्राप्त हो जाता है। यह चक्र इसी प्रकार निरन्तर चलता रहता है। जैसा कि उपनिषद् में कहा गया है-

अन्नाध्येव खलु इमानि भूतानि जायन्ते । अनेन जातानि जीवन्ति। अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति इति।[79]

आज के समाज को उपनिषद् में वर्णित अन्न के सम्बन्ध में यह सन्देश अवश्य जाना चाहिए कि अन्न ही मानव-जीवन के अस्तित्व के लिए आवश्यक है। अन्न व जल के बिना पृथिवी पर उसका जीवन खतरे में पड़ जाएगा। अन्न को विकसित होने में काफी समय लगता है। खेत में बीज बोने के कार्य से लेकर उसके पककर परिवार के लोगों की

---

[78] तैत्तिरीयोपनिषद् ३/२/१

[79] तैत्तिरीयोपनिषद् ३/२/१

थाली में आने तक की एक दीर्घ प्रक्रिया होती है। जिसमें किसान, व्यापारी व श्रमिक का अथक परिश्रम लगा होता है। परन्तु वर्तमान समय में मानव भौतिकतावाद की दौड़ में अन्न की इस लम्बी परम्परा को अनदेखा करके उसको व्यर्थ करने लगा। परिवार से लेकर किसी भी सामाजिक आयोजन में अन्न आमन्त्रित लोगों की मात्रा से काफी अधिक मात्रा में तैयार किया जाता है और आयोजन की समाप्ति होने पर उस बचे हुए अन्न को व्यर्थ ही फेंक दिया जाता है जो अनुचित है।

ऋषि भृगु को कहते हैं कि जीवन में कभी भी, किसी भी परिस्थिति में अन्न की निन्दा नहीं करनी चाहिए क्योंकि यही मनुष्यों को जीने की शक्ति प्रदान करता है। संसार में अनेक देश ऐसे हैं जहाँ पर अन्न को प्राप्त कर पाना बडा कठिन है। भारत में भी अनेक गरीबी वाले क्षेत्रों में लोग अन्न के लिए परेशान रहते हैं। जबकि सम्पन्न क्षेत्रों के लोग अन्न को व्यर्थ करते हैं। मानव को सदैव अन्न को बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए।

अन्नं न निन्द्यात्। तद्व्रतम्।[80]

अन्नं बहु कुर्वीत। तद् व्रतम्।[81]

आज विश्व में अनेक ऐसे देश हैं जो अविकसित हैं, उनके पास विकास करने के लिए पर्याप्त साधन नहीं हैं। वे वैश्विक धरातल पर अपनी स्थिति को मजबूत करने के लिए प्रयत्नशील हैं। अनेक वस्तुओं को ये देश दूसरे देशों से आयात करते हैं। वहीं दूसरी ओर भारत जैसे विकासशील देश भी हैं जिनके पास अनेक संसाधनों की पर्याप्त मात्रा है साथ ही भारत कुछ वस्तुओं को दूसरे देशों को निर्यात करता है और कुछ वस्तुओं को दूसरे देशों से आयात करता है। विकासशील देशों में यह समस्या बहुधा देखी जाती है कि इनमें रहने वाले लोग आवश्यकता के पूर्ण हो जाने पर सामग्री को व्यर्थ करना प्रारम्भ कर देते हैं। अनेक आयोजनों व कार्यक्रमों में देखा जाता है कि खाद्य सामग्री को बेकार करके फेंक दिया जाता है। अत: इस प्रकार की प्रवृत्ति से बचते हुए अन्न आदि पदार्थों का संरक्षण करना चाहिए।

---

[80] तैत्तिरीयोपनिषद् ३/७/१

[81] तैत्तिरीयोपनिषद् ३/९/१

१.६ आरुणि – श्वेतकेतु आख्यान (छान्दोग्योपनिषद्)

छान्दोग्योपनिषद् में आरुणि व श्वेतकेतु के मध्य प्रसिद्ध आख्यान में ऋषि आरुणि शिक्षित होकर आए हुए अपने पुत्र श्वेतकेतु से कुछ दार्शनिक व सामाजिक प्रश्न पूछते हैं। आख्यान में एक स्थान पर आरुणि श्वेतकेतु को उपभोग किए हुए अन्न, घृत व जल के विभाजन के विषय में बताते है। भौतिक जीवन में प्रत्येक जीव इन तीनों वस्तुओं का उपभोग करता है। इनका उपभोग करने के उपरान्त उसकी मानसिकता कैसी होगी? यह उस उपभुक्त वस्तु के विभाजन पर ही निर्भर करता है। सर्वप्रथम अन्न के विषय में ऋषि आरुणि कहते हैं –

अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य य: स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति यो मध्यमस्तन्मांसं योऽणिष्ठस्तन्मन: ।[82]

खाया हुआ अन्न मानव शरीर में जाकर, जठराग्नि के द्वारा पचाए जाने पर तीन प्रकार से विभाजित होता है। उसका स्थूल भाग मल बनता है, मध्य भाग मांस बनता है औरा सूक्ष्म भाग मन में परिवर्तित हो जाता है। अन्न के सूक्ष्म भाग के मन में परिवर्तित होने की प्रक्रिया के विषय में बताते हुए आचार्य शंकर व्याख्या करते हैं

[82] छान्दोग्योपनिषद्. ६/५/१

स ऊर्ध्वं ह्रुदयं प्राप्य सूक्ष्मासु हिताख्यासु नाडीष्वनुप्रविश्य वागादिकरणसंघातस्य स्थितिमुत्पादयन् मनो भवति।[83]

अर्थात् अणु भाग ऊपर की ओर हृदय में पहुँचकर हिता नामक सूक्ष्म नाड़ी में प्रवेश करके वायु आदि इन्द्रिय समूह की स्थिति उत्पन्न करता हुआ मन हो जाता है।[84]

इसके आगे आरुणि पिए हुए पानी के त्रिविध विभाजन को बताते हुए कहते है-

आप: पीतास्त्रेधा विधीयन्ते तासां य: स्थविष्ठो धातुस्तन्मूत्रं भवति यो मध्यमस्तल्लोहितं योऽणिष्ठ: स प्राण:।[85]

अर्थात् मानव द्वारा पिये गए जल का स्थूल भाग मूत्र में परिवर्तित हो जाता है, मध्य भाग रक्त बन जाता है और जो सूक्ष्म भाग बचता है, वह प्राण बन जाता है। श्रुति भी इस विषय में कहती है कि

आपोमय प्राणो न पिबतो विच्छेत्स्यते।[86]

अर्थात् प्राण जलमय है और जलपान करते हुए प्राण विच्छिन्न नहीं होता।

---

[83] छान्दोग्योपनिषद् शांकरभाष्य् ६/५/१

[84] छान्दोग्योपनिषद्. शांकरभाष्य् ६/५/१

[85] छान्दोग्योपनिषद् ६/५/२

[86] छान्दोग्योपनिषद् शांकरभाष्य् ६/५/२

जल ही जीवन है। जल के बिना कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता है। पीने योग्य जल प्रत्येक जीव को उपलब्ध होना उसके अस्तित्व के लिए अत्यावश्यक है। पृथिवी पर सामान्यत: 71% भू-भाग पर जल है परन्तु वह सम्पूर्ण जल की मात्रा समुद्र, झील आदि के जल को मिलाकर बताई गई है। जबकि पीने योग्य जल की मात्रा काफी कम है जो निरन्तर कम होती जा रही है। वर्तमान समय में उपभोग करने योग्य जल को बचाने के लिए राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक प्रयास किए जा रहे हैं। भारत-सरकार द्वारा जल-संरक्षण से सम्बन्धित अनेक योजनाओं को प्रारम्भ किया गया है। ऐसे समय में प्रत्येक नागरिक का मुख्य कर्त्तव्य बनता है कि वह जल के दुरुपयोग से बचे और अपने उपभोग के लिए आवश्यकतानुसार साफ जल का उपयोग करे।

आगे ऋषि मानव द्वारा खाए गए घी का तीन प्रकार से विभाजन करते हुए बताते हैं

तेजोऽशितं त्रेधा विधीयते तस्य य: स्थविष्ठो धातुस्तदस्थि भवति यो मध्यम: स मज्जा योऽणिष्ठो सा वाक्।[87]

अर्थात् खाने के बाद शरीर के अन्दर गया हुआ घी तीन प्रकार का हो जाता है। उसका जो स्थूल भाग होता है वह हड्डी बन जाता है, जो मध्यम भाग होता है वह मज्जा बन जाता है और सूक्ष्म भाग होता है वह वाक् बन जाता है।

---

[87] छान्दोग्योपनिषद् ६/५/३

इससे यह ज्ञात होता है कि स्थूलत: घी खाने से मानव-शरीर की हड्डियाँ मजबूत होती हैं और सूक्ष्मत: जैसा घी मनुष्य खाता है, वैसी ही उसकी वाणी बन जाती है।

अन्त में ऋषि श्वेतकेतु को इन तीनो के विषय में और अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं

अन्नमयं हि सोम्य मन आपोमय: प्राणस्तेजोमयी वागिति भूय एव।[88]

वाणी, मन और प्राण ये तीनों ही तत्त्व मानव-शरीर में अद्वितीय महत्त्व रखते हैं। प्राण मनुष्य के शरीर को चेतनता प्रदान करता है तो मन उसको किसी भी कार्य को करने के लिए तैयार करता है। जिस किसी भी कार्य को व्यक्ति करना चाहता है, उसको सम्पादित करने से पूर्व जो विचार वह अपने मन में करता है, उसी को 'मानसिक तैयारी' (Mental Preparedness) कहा गया है।

१.७ नारद – सनत्कुमार आख्यान (छान्दोग्योपनिषद्)

ऋषि सनत्कुमार नारद को ध्यान के विषय में उपदेश करते हैं। ध्यान एक ऐसा माध्यम है जो संन्यासी के साथ ही सामाजिक गृहस्थ व्यक्ति को भी शान्ति व संयम प्रदान करता है। वर्तमान समाज में प्रत्येक व्यक्ति प्रतिस्पर्धा के युग में आगे बढ़ने के प्रयास में लगा हुआ है। शिक्षा, उद्योग आदि से लेकर निवास-स्थान तक के विषय में

[88] छान्दोग्योपनिषद् ६/५/४

मानव कड़ी स्पर्धा से गुजर रहा है। ऐसी स्थिति में अनेक बार वह चिंता का शिकार हो जाता है। तकनीकी साधनों के बढ़ते उपयोग ने भी मानव-मस्तिष्क पर अपना गहरा प्रभाव डाला है। आज मानव भी मशीन की भाँति सोचने लगा है तथा उसी की तरह बिना रुके काम करने का प्रयत्न करता है। ऐसे समय में उसको अपने मन को स्थिर करने हेतु ध्यान की अतीव आवश्यकता है। ध्यान के इसी महत्त्व को जानकर ऋषि सनत्कुमार नारद को बताते हैं

ध्यानं वाव चित्ताद्भूयो ध्यायतीव पृथिवी ध्यायतीवान्तरिक्षं ध्यायतीव द्यौः ध्यायन्तीव आपो ध्यायन्तीव पर्वता ध्यायन्तीव देवमनुष्यास्तस्माद्य इह मनुष्याणां महत्तां प्राप्नुवन्ति ध्यानापादाँशा इवैव ते भवन्त्यथ येऽल्पाः कलहिनः पिशुना उपवादिनस्तेऽथ ये प्रभवो ध्यानापादाँशा इवैव ते भवन्ति ध्यानमुपास्स्वेति।[89]

अर्थात् ध्यान चित्त से बढ़कर है। पृथिवी ध्यान करती है, अन्तरिक्ष ध्यान करता है, द्युलोक ध्यान करता है, जल ध्यान करता है, पर्वत ध्यान करता है तथा देवता व मनुष्य भी ध्यान करते हैं। अतः जो लोग यहाँ मनुष्यों में महत्त्व प्राप्त करते हैं वे मानो ध्यान के लाभ का ही अंश पाते हैं। किन्तु शूद्र लोग कलहप्रिय, चुगुलखोर और दूसरों के

[89] छान्दोग्योपनिषद् ७/६/१

मुँह पर ही उनकी निन्दा करने वाले होते हैं तथा जो सामर्थ्यवान् हैं वे भी ध्यान के लाभ का ही अंश प्राप्त करने वाले हैं। अत: तुम ध्यान की उपासना करो।[90]

ऋषि सनत्कुमार नारद के प्रति भूमा तथा अल्प का उपदेश करते हैं। इस उपनिषद में यह आख्यान बहुत प्रसिद्ध है। यह समाज में रहने वाले सभी लोगों के लिए आवश्यक है। आजकल समाज में अधिकांश लोग अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए हर प्रकार का प्रयास करते हैं जबकि उनको अपने लक्ष्यों की पूर्ति के साथ-साथ अन्य लोगों के हितो को भी ध्यान में रखना आवयश्क है। यहाँ पर ऋषि सनत्कुमार सुख व दु:ख की परिभाषा देते हुए कहते हैं-

यो वै भूमा तत् सुखम् नाल्पे सुखमस्ति।[91]

अर्थात् जो भूमा है वही सुख है तथा अल्प में सुख नहीं है। यहाँ पर भूमा से अभिप्राय व्यापकता से है। जो कभी अल्प में नहीं आती। उसके लिए भूमा का होना आवयश्क है। उसी को जानना चाहिए। व्यक्ति को अपने भौतिक जीवन में सुखी रहने के लिए भूमा स्वभाव वाला होना आवश्यक है। जब वह समाज के दूसरे लोगों की भलाई के विषय में सोचेगा, अन्य की कठिनाई को अपनी कठिनाई समझेगा, अन्य की सफलता

---

[90] छान्दोग्योपनिषद् ७/६/१

[91] छान्दोग्योपनिषद् ७/२३/१

को अपनी सफलता समझेगा तभी वह उनके साथ अपनापन अनुभव करेगा। अत: भूमा स्वभाव वाला व्यक्ति एकाकी न होकर सामाजिक कहलाता है। इसीलिए ऋषि सनत्कुमार उपनिषद् के पाठक को भूमा को जानना आवश्यक बताते हैं-

भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य:।[92]

आगे ऋषि भूमा की उपनिषद्-वर्णित परिभाषा देते है

यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छ्रणोति नान्यद्विजानाति स भूमा।[93]

अर्थात् जहाँ व्यक्ति अन्य कुछ नहीं देखता, कुछ अन्य नहीं सुनता और कुछ अन्य नहीं जानता, वही भूमा है। यहाँ पर अन्य से अभिप्राय दूसरे से हैं। व्यक्ति को यह मानना चाहिए कि उसके लिए कोई भी पराया नहीं है। समाज के अन्य लोगों में भी उसे स्वयं का प्रतिबिम्ब देखना चाहिए।

फिर ऋषि अल्प की परिभाषा देते हैं

यत्र अन्यत्पश्यति अन्यच्छ्रणोति अन्यद्विजानाति तदल्पम्।[94]

---

[92] छान्दोग्योपनिषद् ७/२३/१

[93] छान्दोग्योपनिषद् ७/२४/१

[94] छान्दोग्योपनिषद् ७/२४/१

अर्थात् जो अन्य को देखता है, अन्य को सुनता है और अन्य को जानता है, वह अल्प है। अन्य से यहां पर अभिप्राय अपने साथ के लोगों को पराया समझना है। यदि मानव अपने साथ के लोगों को पराया समझेगा और उनकी परिस्थितियों को अपनी परिस्थिति नहीं समझेगा तो वह 'अल्प' कोटि का माना जाएगा।

ऋषि कहते हैं कि -

यो वै भूमा तदमृतम् अथ यदल्पं तन्मर्त्यम्॥[95]

अर्थात् जो भूमा है वह अमृत को प्राप्त करता है और जो अल्प है, वह मरण अथवा क्षीण होने योग्य होता है।

भूमा व अल्प की यह अवधारणा वर्तमान के सामाजिक मनुष्य को अपनी सोच को विकसित करने की प्रेरणा देता है। यह उसी व्यक्ति के चिन्तन पर निर्भर करता है कि वह भूमा बनना चाहता है या अल्प को अपनाना चाहता है। यदि वह अल्प को अपनाएगा तो अपने साथ वालों से सदैव अलग रहेगा। किसी की परेशानी को नहीं समझ सकेगा। इसके विपरीत यदि वह भूमा प्रकृति वाला बनेगा तो सभी को अपने ही समान देखेगा व सबकी स्थितियों को अनुभव कर सकेगा।

---

[95] छान्दोग्योपनिषद् ७/२४/१

१.८ याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी संवाद (वृहदारण्यकोपनिषद्)

वृहदारण्यकोपनिषद् में ऋषि याज्ञवल्क्य तथा उनकी विदुषी पत्नी मैत्रेयी के मध्य संवाद प्रसिद्ध है। ऋषि याज्ञवल्क्य की दो पत्नियाँ थी एक कात्यायनी तथा दूसरी मैत्रेयी। पहली पत्नी कात्यायनी प्रेय को चाहती थी और दूसरी श्रेय को। जब याज्ञवल्क्य ऋषि संन्यास आश्रम में प्रवेश करने के लिए वन को जाने लगे तो उन्होंने मैत्रेयी से कहा कि हे मैत्रेयी! अब मैं संन्यास के लिए जाने वाला हूँ तो कात्यायनी के साथ तेरा बंटवारा कर दूँ।

अहम् अस्मात्स्थानादस्मि हस्त तेऽनया कात्यायन्यान्तं करवाणीति।[96]

यह सुनकर मैत्रेयी ने ऋषि को जो उत्तर दिया, वह समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिये अनुकरणीय है। मैत्रेयी बोली-

यन्नु म इयं भगो: सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात्कथं तेनामृता स्यामिति।[97]

अर्थात् यदि धन से युक्त यह सम्पूर्ण पृथिवी मेरी हो जाए तो क्या मैं अमरता को प्राप्त कर सकूंगी? नहीं। यदि ऐसा हो भी गया तो भोग-सामग्री से युक्त विलासी लोगों का जैसा जीवन होता है वैसा ही मेरा भी हो जाएगा। इससे कोई लाभ नहीं है क्योंकि

---

[96] वृहदारण्यकोपनिषद् २/४/१

[97] बृहदारण्यकोपनिषद् २/४/२

भोग-सामग्री वाला सुख क्षणिक होता है। आप मुझे उस ज्ञान को दीजिए जिससे मैं अमर हो जाऊँ। आज के समय में जो बात पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है, वह बात मैत्रेयी के शब्दों में उपनिषद् में भी ऋषि कहते हैं-

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्य:।[98]

अर्थात् धन से मनुष्य कभी भी तृप्त नहीं हो सकता।

आगे मैत्रेयी कहती है-

येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्यां यदेव भगवान्वेद तदेव में ब्रूहीति।[99]

जिससे मैं अमर नहीं हो सकती, उस धन का मैं क्या करूंगी? ऋषि जो अमरता का मार्ग जानते हो उसी का मुझे उपदेश करें।

१.८.१ द्वैत की आवश्यकता व्यहवार में, परमार्थ द्वैत से परे

इसके पश्चात् ऋषि याज्ञवल्क्य मैत्रेयी की बात से प्रसन्न होकर उसको ब्रह्म के स्वरूप के विषय में रहस्यमयी व दार्शनिक बात बताते हैं। वह कहते हैं कि व्यक्ति को द्वैत की प्रतीति सामाजिक व्यवहार के समय होती है और व्यवहार के लिए द्वैत का होना

---

[98] वृहदारण्यकोपनिषद् २/४/२

[99] वृहदारण्यकोपनिषद् २/४/३

भी आवश्यक है। उदाहरणार्थ, यदि कोई गुरु है तो उसका शिष्य भी अवश्य होगा, गुणी में गुण अवश्य होगा, पिता का पुत्र अवश्य होगा, सम्बन्ध है तो उसका सम्बन्धी भी अवश्य होगा। ये सभी व्यवहार के घटक हैं। जैसा कि नव्य न्याय भाषा प्रदीप में बताया गया है। कारिकावली भी कहती है कि सम्बन्ध सदैव दो के मध्य होता होता है। एक सम्बन्धी का ज्ञान दूसरे सम्बन्धी का स्मरण कराता है।

सम्बन्ध: द्विष्ठ:। एकसम्बन्धी ज्ञानम् अपरसम्बन्धीस्मारकम्।[100]

इसी के प्रसंग में ऋषि याज्ञवल्क्य कहते हैं कि जहाँ पर द्वैत है वहाँ पर सभी को सब कुछ अन्य अन्यतर दिखाई देता है। एक दूसरे को सूँघता है, एक दूसरे को देखता है, एक दूसरे को सुनता है, एक दूसरे का अभिवादन करता है, एक दूसरे को मानता है तथा एक दूसरे को जानता है।

यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं जिघ्रति तदितर इतरं पश्यति तदितर इतरं शृणोति तदितर इतरमभिवदति तदितर इतरं मनुते तदितर इतरं विजानाति।[101]

आगे ऋषि व्यवहार से परे के विषय में बताते हैं कि जहाँ पर व्यवहार की आवश्यकता ना रहे अर्थात् सब कुछ आत्मभूत हो जाए वहाँ कोई किसी अन्य को नहीं

---

[100] कारिकावली

[101] वृहदारण्यकोपनिषद् २/४/१४

सूँघता है, किसी अन्य को नहीं देखता है, किसी अन्य को नहीं सुनता है, किसी अन्य को नहीं अभिवादन करता है, किसी अन्य को नहीं जानता है।

जो व्यक्ति परम ज्ञान को प्राप्त कर लेता है वह अन्य में भी स्वयं को ही देखता है। इसीलिए उसको व्यवहार की आवश्यकता नहीं रहती और व्यवहार की आवश्यकता न रहने से उसे कोई पराया नहीं दिखता। अत: देखने और जानने की उपरोक्त सब क्रियाएँ उसके लिए महत्त्व नहीं रखती।

उपनिषद् का यह संदेश समाज के लिए अतीव आवश्यक है। सामाजिक व्यक्ति प्रतिस्पर्द्धा के वशीभूत होकर आपस में ही अपना-पराया देखने लगता है। एक मानव दूसरे मानव की उन्नति से ईर्ष्या करने लगता है, एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति की मुसीबत से कोई मतलब नहीं है। अधिकांश लोग एक-दूसरे को पछाड़ कर आगे निकलना चाहते हैं। ऐसे समय में यह कथन मानव को शिक्षा देता है कि मानवता ही सर्वोपरि है और जहाँ मानवता होती है वहाँ एक व्यक्ति दूसरे को हराने के लिए नहीं अपितु उसके सहयोग के लिए सदैव तैयार रहता है।

१.८.२ ब्रह्मज्ञान में अधिक शास्त्राभ्यास बाधक

ब्रह्म की प्राप्ति मानव जीवन का प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए। ब्रह्म प्राप्ति के साधनों में से एक शास्त्राभ्यास को भी माना जाता है परन्तु यहाँ पर ऋषि कहते हैं कि आवश्यकता से अधिक शास्त्र का अभ्यास ब्रह्म प्राप्ति में बाधक बन जाता है-

तमेंव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मण:।

नानुध्यायाद् बहूञ्छब्दान् वाचो विग्लापनँ हि तदिति॥[102]

अर्थात् धीरपुरुष को ब्रह्म को ही जानने में अपनी प्रज्ञा लगानी चाहिए। अधिक शब्दों का निरन्तर चिन्तन मात्र वाणी का भ्रम है।

शास्त्राभ्यास की ब्रह्म को जानने में आवश्यकता है, परन्तु वह एक सीमा तक होनी चाहिए। आवश्यकता से अधिक शास्त्र का सहयोग लेना व्यक्ति को शंकित बना देता है और फिर वह ज्ञान के मार्ग से भटक जाता है। इसीलिए ब्रह्मसूत्र में भी कहा गया है कि ब्रह्मज्ञान अनुभूति का विषय होने से उसमें तर्क को अधिक नहीं मानना चाहिए-

तर्काप्रतिष्ठानात्।[103]

---

[102] वृहदारण्यकोपनिषद् ४/४/२१

[103] ब्रह्मसूत्र २.१.११

इसी प्रसंग में उपनिषद् भी कहती है-

न अनुध्यायात्-नानुचिन्तयेत्, बहून् प्रभूतान् शब्दान्; तत्र बहुत्वप्रतिषेधात् केवलात्मैकत्वप्रतिपादका: स्वल्पा: शब्दा अनुज्ञायन्ते।[104]

अर्थात् अधिक शब्दों का अनुध्यान या चिन्तन नहीं करना चाहिए। यहाँ पर 'बहुत्वप्रतिषेधात्' का अर्थ आत्मा से एकत्व स्थापित करने वाले 'ओऊम्' आदि शब्दों का निषेध नहीं किया गया है।

१.९ प्रजापति आख्यान(वृहदारण्यकोपनिषद्)

वृहदारण्यकोपनिषद् के अध्याय पाँच में प्रजापति देव, मनुष्य तथा असुर को उपदेश देने के लिए अपने पास बुलाते हैं। ये तीनों प्रजापति परमेष्ठिन् के पुत्र माने गए हैं। इन तीनों ने ही प्रजापति के सान्निध्य में ब्रह्मचर्यवास किया। उसके समाप्त होने पर तीनों पुत्रों ने प्रजापति को उपदेश करने के लिए कहा। तब प्रजापति ने उन तीनों के लिए एक ही अक्षर बोला वह था – 'द'। उन तीनों ने ही अपनी–अपनी मानसिकता से उसका अर्थ ले लिया। सर्वप्रथम प्रजापति ने देवों से पूछा कि समझ गए क्या? तो देवों ने कहा कि आप हमसे 'दमन करो' ऐसा कह रहे हैं। तब प्रजापति बोले कि ठीक है, तुम समझ गए।

---

[104] वृहदारण्यकोपनिषद् शा. भा. ४/४/२१

देवा ऊचुर्ब्रवीतु नो भवानिति तेभ्यो हैतदक्षरमुवाच द इति व्याज्ञासिष्टा इति व्यज्ञासिष्टमेंति होचुर्दाम्यतेति न आत्थेत्योमिति होवाच व्याज्ञासिष्टेति।[105]

फिर प्रजापति से मनुष्यों ने कहा कि आप हमें उपदेश कीजिए। तब प्रजापति ने मनुष्यों को भी 'द' अक्षर बोलकर पूछा कि समझ गए क्या? तब मनुष्य बोले कि आप हमसे 'दान करो' ऐसा कह रहे हैं। यह सुनकर प्रजापति ने कहा कि तुम ठीक समझ गए।

मनुष्या ऊचुर्ब्रवीतु नो भवानिति तेभ्यो हैतदक्षरमुवाच द इति व्याज्ञासिष्टा इति व्यज्ञासिष्टमेंति होचुर्दाम्यतेति न आत्थेत्योमिति होवाच व्याज्ञासिष्टेति।[106]

फिर प्रजापति से असुरों ने कहा कि आप हमें उपदेश कीजिए। तब प्रजापति ने उनको भी 'द' अक्षर बोलकर पूछा कि समझ गए क्या? तब असुर बोले कि आप हमसे 'दया करो' ऐसा कह रहे हैं। यह सुनकर प्रजापति ने कहा कि तुम ठीक समझ गए।

अथ हैनमसुरा ऊचुर्ब्रवीतु नो भवानिति तेभ्यो हैतदक्षरमुवाच द इति व्याज्ञासिष्टा इति व्यज्ञासिष्टमेंति होचुर्दाम्यतेति न आत्थेत्योमिति होवाच व्याज्ञासिष्टेति।[107]

---

[105] वृहदारण्यकोपनिषद् ५/२/१

[106] वृहदारण्यकोपनिषद् ५/२/२

[107] वृहदारण्यकोपनिषद् ५/२/३

उपनिषद् कहती है कि उस प्रजापति की दैवी वाक् आज भी द द द का उपदेश समाज के प्रत्येक व्यक्ति को करती है और व्यक्तियों को अपनी–अपनी प्रवृत्ति के अनुसार 'दमन करो', 'दान करो' और 'दया करो' इन तीनों में एक अर्थ को स्वीकार कर लेना चाहिए-

तदेतदेवैषा दैवी वागनुवदति स्तनयित्नुर्द द द इति दाम्यत दत्त दयध्वमिति तदेतत् त्रयँ शिक्षेद्दमं दानं दयामिति।[108]

देवता, मनुष्य व राक्षस समाज में ये तीन ही प्रकार के व्यक्ति होते हैं। अपने सामने हो रही विभिन्न गतिविधियों के ये अपनी-अपनी प्रवृत्ति के अनुसार समझते हैं। प्रजापति द्वारा उच्चारित 'द' वर्ण का इन्होंने पृथक् पृथक् अर्थ ग्रहण किया और वही अर्थ इनको श्रेय प्रदान करने में समर्थ है। जैसे दया असुर ही कर सकता है, देवता नहीं। ठीक उसी प्रकार दान भी गृहस्थ मनुष्य ही कर सकता है न कि दानव। अत: प्रत्येक पद का अर्थ प्रत्येक व्यक्ति अलग हो सकता है।

१.१० गुरु शिष्य आख्यान (केनोपनिषद्)

केनोपनिषद् में गुरु और शिष्य के मध्य ब्रह्म के ज्ञान सम्बन्धी आख्यान का वर्णन हैं। जिसमें गुरु शिष्य को ब्रह्म सम्बन्धी ज्ञान के अहंकार का निराकरण करते हुए कहते

[108] वृहदारण्यकोपनिषद् ५/२/३

हैं। कि हे शिष्य! यदि तू यह मानता है कि मैने ब्रह्म को अच्छी प्रकार से जान लिया है तो यह निश्चित हैं कि तूने उसको बहुत कम जाना है। यह यथार्थ है कि ब्रह्म का जो अंश तेरे और देवताओ के अन्दर है, वह बहुत कम है। इसीलिए ब्रह्म के ज्ञान के सन्बन्ध में तुम्हारा ज्ञान विचारणीय है।

यदि मन्यसे सुवेदेति दब्रमेंवापि

नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम्।

यदस्य त्वं यदस्यदेवेष्वथ नु

मीमाँस्यमेंव ते मन्ये विदितम्॥[109]

यहाँ पर अहंकारशून्यता को प्राप्त करने की बात कही गई है। जब किसी भी व्यक्ति के अन्दर अहंकार प्रवेश कर जाता है तो वह धीरे धीरे अवनति की ओर बढ़ने लगता है। अहंकार अथवा 'मैं' का भाव ही मानव को आगे बढ़ने से रोकता है। अहंकारग्रस्त व्यक्ति स्वयं को ही कर्त्ता मानकर मिथ्याभिमानी हो जाता है। जबकि ब्रह्मज्ञान की प्रथम विशेषता है कि यह व्यक्ति के अन्दर स्थित अहंकार को नष्ट करके उसको सत्त्व में स्थित करता है। ब्रह्मज्ञानी का ब्रह्म के साथ ही एकाकार हो जाता है। इसीलिए ज्ञानी व्यक्ति यह कदापि नहीं कहेगा कि मैंने ब्रह्म को जान लिया है। अपितु

---

[109] केनोपनिषद्. २/२/१

वह स्वयं को अज्ञानी मानता हुआ कहेगा कि मैं नहीं जान पाया हूँ क्योंकि उसके अन्दर से 'मैं' का भाव क्षीण हो चुका है। इसको स्पष्ट करते हुए गुरु शिष्य को कहते हैं-

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद स।

अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्॥[110]

जिसने ब्रह्म को नहीं जाना है, वह जान गया है और जो मानता है कि मैं जान गया हूँ उसने वास्तव में नहीं जाना है। सार रूप में अज्ञानियों ने जान लिया है और ज्ञानियों ने नहीं जाना है।

इसके पश्चात् शिष्य कहता है कि हे गुरु मैं यह नहीं कहता कि मैं ब्रह्म को अच्छी प्रकार जान गया हूँ, और ना ही ये कहता हूँ कि मैं बिलकुल नहीं जानता बल्कि ब्रह्म ज्ञान के विषय में यह सत्य है कि जो जानता है वह नहीं जानता और जो नहीं जानता वह वास्तव में जान गया है।

नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च।

यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च॥[111]

---

[110] केनोपनिषद् २/२/३

[111] केनोपनिषद् २/२/२

इसके बाद गुरु शिष्य को ब्रह्म के ज्ञान के विषय में निष्कर्ष रूप में बताते हैं कि यदि तूने अपने अन्दर स्थित ब्रह्म को जान लिया तो अच्छा है। यदि नहीं जाना तो नाश निश्चित हैं क्योंकि मानव जीवन का लक्ष्य ही सत्य को जानना और उसको अनुभव करना है। सृष्टि में हर जगह उस एक शक्ति को अलग–अलग रूपों में उसको देखने का प्रयत्न करना चाहिए। इसीलिए ज्ञानी लोग कण-कण में उस ब्रह्म को देखते हैं और अमरता को प्राप्त करते हैं।

इह चेद्वेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टि:।

भूतेषु भूतेषु विचित्य धीरा: प्रेत्यास्माल्लोकादमृता: भवन्ति॥[112]

जब व्यक्ति ब्रह्म की उपस्थिति को प्रत्येक भूत में अनुभव करने लगता है तो उसको सत्यज्ञान की प्राप्ति होती है। यह जानकर वह सम्पूर्ण विश्व के प्रत्येक प्राणी में स्वयं को और प्रत्येक प्राणी को स्वयं में देखने लगता है। उपनिषद् यह कहती है कि इस सत्य को यदि जान लिया जाए तो लाभ व उन्नति है और यदि नहीं जाना तो हानि है।

१.११ ब्रह्म-देवता आख्यान (केनोपनिषद्)

एक बार देवताओं तथा असुरों के बीच युद्ध हुआ और उसमें देवता विजयी हो गए। साथ ही उनको अपनी विजय का अभिमान भी हो गया। यह विजय वास्तव में

---

[112] केनोपनिषद् २/२/५

देवताओं को निमित्त बनाकर ब्रह्म की ही थी।[113] फिर ब्रह्म देवताओं के इस अभिमान को जानकर यक्ष के रूप में उनके सामने प्रकट हो गए। देवता उनको नहीं जान पाए और उन्होंने अग्नि देवता से कहा कि आप पता कीजिए कि यह कौन है?[114]

तब अग्निदेव यक्ष के पास गए तो पहले यक्ष ने ही अग्निदेव से पूछ लिया – तुम कौन हो? तब अग्निदेव अभिमानपूर्वक बोला कि मैं अग्निदेव हूँ और मैं ही 'जातवेदा' नाम से प्रसिद्ध हूँ।

अहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति।[115]

तब यक्ष ने पूछा कि तुझ अग्नि में क्या सामर्थ्य है? तब अग्नि ने उत्तर दिया कि यदि मैं चाहूँ तो पृथिवी पर जो कुछ भी है इस सब को जलाकर भस्म कर दूँ।

अपीदँ सर्वं दहेयम्, यदिदं पृथिव्यामिति।[116]

तब उस दिव्य यक्ष ने अग्नि के सामने एक तिनका रख दिया और उसको जलाने को कहा। अग्नि ने उस तिनके को जलाने में अपनी सम्पूर्ण सामर्थ्य लगा दी परन्तु वह

---

[113] ब्रह्म हे देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजिग्ये देवा अहीमयन्त। - केनोपनिषद् २/३/१

[114] तेऽग्निमब्रुवञ्जातवेद एतद् विजानीहि किमिदं यक्षमिति तथेति। - केनोपनिषद् २/३/३

[115] केनोपनिषद् २/३/४

[116] केनोपनिषद् २/३/५

तिनके को जलाने में किसी भी प्रकार समर्थ नहीं हुआ। फिर अग्नि लज्जित होकर लौट गया और देवताओं से बोला कि मैं नहीं जान पाया कि यह कौन है?

तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति। तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाक दग्धुं स तत एव निववृते।[117]

फिर देवताओं ने वायुदेवता को यक्ष के पास भेजा और जब वायु भी दौड़कर यक्ष के पास गया तो यक्ष ने पूछा कि तुम कौन हो? तब वायु ने उत्तर दिया कि मैं प्रसिद्ध वायुदेव हूँ और 'मातरिश्वा' के नाम से जाना जाता हूँ।

अहमस्मीत्यब्रवीमातरिश्वा वा अहमस्मीति।[118]

तब यक्ष ने पूछा कि तुझमें क्या सामर्थ्य है तो वायु बोला कि मैं चाहूँ तो इस पृथिवी पर जो कुछ भी है, उस सब को आकाश में उडा दूँ।

अपीदँ सर्वमाददीयम्, यदिदं पृथिव्यामिति।[119]

तब उस दिव्य यक्ष ने वायु के सामने एक तिनका रख दिया और उसको उड़ाने को कहा। वायु ने उस तिनके को उड़ाने में अपनी सम्पूर्ण सामर्थ्य लगा दी परन्तु वह

---

[117] केनोपनिषद् २/३/६

[118] केनोपनिषद् २/३/८

[119] केनोपनिषद् २/३/९

तिनके को उड़ाने में किसी भी प्रकार समर्थ नहीं हुआ। फिर वायु लज्जित होकर लौट गया और वापिस आकर देवताओं से बोला कि मैं नहीं जान पाया कि यह कौन है?[120]

फिर देवताओं ने इन्द्र को यक्ष के पास उसका पता लगाने के लिए भेजा। इन्द्र भी दौड़कर यक्ष के पास गया तो वह दिव्य यक्ष इन्द्र के सामने से अन्तर्धान हो गया।

तदभ्यद्रवत्। तस्मात् तिरोदधे।[121]

तब इन्द्र ने उसी स्थान पर अति सुन्दर देवी हैमवती को देखा और उनसे पूछा कि यह दिव्य यक्ष कौन था?

बहुशोभमानामुमाँ हैमवतीं ताँ होवाच किमेंतद् यक्षमिति।[122]

तब उमा हैमवती ने देवताओं के प्रश्न का उत्तर दिया कि

सा ब्रह्मेति होवाच। ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वमिति, ततो हैव विदाञ्चकार ब्रह्मेति।[123]

---

[120] केनोपनिषद् २/३/१०

[121] केनोपनिषद् २/३/११

[122] केनोपनिषद् २/३/१२

[123] केनोपनिषद् २/४/१

अर्थात् वह वास्तव में ब्रह्म ही यक्ष के रूप में तुम्हारे पास आए थे। हैमवती ने स्पष्ट कहा कि यह विजय यथार्थ में ब्रह्म की ही विजय थी जिसको तुमने अपनी विजय समझ लिया था और जिससे तुम सब अभिमानी हो गए थे तब देवताओं ने समझा कि यह ब्रह्म था।

१.१२ सत्यकाम जाबाल आख्यान (छान्दोग्योपनिषद्)

जबाला नाम की एक ब्राह्मणी स्त्री थी और उसका एक पुत्र था सत्यकाम। जब सत्यकाम बड़ा होकर विद्याध्ययन के योग्य हुआ तो उसने अपनी माता से कहा कि मैं विद्या का अध्ययन करने के लिए गुरुकुल में जाना चाहता हूँ परन्तु वहाँ पर सर्वप्रथम प्रवेश पाने वाले का नाम पूछा जाता है तो मैं उनको अपना कौन-सा गोत्र बताऊँ?

तब माता बोली कि युवावस्था में मैं जब बहुत से लोगों के यहाँ सेविका का काम करती थी, तभी मैंने तुझे प्राप्त किया । इसीलिए मैं नहीं जानती हूँ कि तुम किस गोत्र के हो। फिर जबाला ने कहा कि तुम सत्यकाम हो और जबाला। अत: तुम अपना नाम 'सत्यकाम जाबाल' बता देना। यह सुनकर सत्यकाम हरिद्रमुत ऋषि गौतम के पास अध्ययन करने गया और उनसे बोला कि हे ऋषि! मैं आपके आश्रम में विद्या ग्रहण करना चाहता हूँ। तब ऋषि बोले कि हे वत्स! तुम्हारा गोत्र क्या है?

तब सत्यकाम बोला कि हे ऋषि! मुझे अपना गोत्र स्वयं भी नहीं पता। मेंरी माता ने मुझे बताया कि पहले वह बहुत से लोगों के घर परिचारिका का कार्य करती थी, तभी मेरा जन्म हुआ। अत: वह भी नहीं जानती कि मैं इस गोत्र से हूँ।

यह सुनकर ऋषि समझ गए कि इतना सत्य कोई ब्राह्मण ही बोल सकता है। तब वे सत्यकाम से बोले कि वत्स! तुम मेरे आश्रम में विद्या अवश्य ग्रहण करोगे। जाओ और समिधा ले आओ।

सत्यकाम समिधा ले आया और ऋषि ने आश्रम की सौ निर्बल गायों को सत्यकाम को देते हुए कहा कि वत्स! जब ये गायें एक हजार हो जाएं तब तुम इनको लेकर आ जाना। सत्यकाम ने गुरु की यह आज्ञा स्वीकार कर ली।

सत्यकाम गायों को लेकर वन में चला गया और उनकी सेवा करने लगा। एक दिन वे गायें एक हजार हो गईं। तब एक दिन वृषभ सत्यकाम के पास आया और बोला कि मैं तुम्हें ब्रह्मतत्त्व के सम्बन्ध में एक चरण का उपदेश करता हूँ। वृषभ बोला- पूर्व दिक्कला, पश्चिम दिक्कला, उत्तर दिक्कला और दक्षिण दिक्कला, यह ब्रह्म का प्रकाशवान् नामक चार कलाओं वाला प्रथम पाद है।

इसके बाद आगे चलकर अग्नि ने सत्यकाम को ब्रह्म के दूसरे पाद के बारे में बताया - पृथ्वी कला है, अन्तरिक्ष कला है, द्युलोक कला है और समुद्र कला है। वत्स! यह ब्रह्म का चतुष्कल पाद अनन्तवान् नाम वाला है।

आगे चलकर एक हंस आकाश से नीचे उतरा और सत्यकाम को ब्रह्म के तीसरे पाद के विषय में बताने लगा। हे सौम्य! अग्नि कला है, सूर्य कला है, चन्द्रमा कला है और विद्युत कला है। यह ब्रह्म का चतुष्कल पाद 'ज्योतिष्मान्' कहलाता है।

आगे चलकर जलमुर्ग ने सत्यकाम को ब्रह्म के चौथे पाद के विषय में बताया- प्राण कला है, चक्षु कला है, श्रोत्र कला है और मन कला है। हे सौम्य! यह पाद 'आयतनवान्' नाम वाला है।

इस प्रकार सुनकर जब सत्यकाम एक हजार गायों के साथ आश्रम पहुँचा तो उसे देखकर ऋषि प्रफुल्लित हो गए और बोले हे वत्स! तुम तो ब्रह्मवेत्ता से लग रहे हो। तब सत्यकाम ने उत्तर दिया- भगवन्! अभी तो मुझे मनुष्येतर (देवताओं) ने उपदेश किया है परन्तु मैं आप से भी उपदेश प्राप्त करना चाहता हूँ क्योंकि आचार्य से प्राप्त की गई विद्या ही श्रेष्ठ होती है।

सत्यकाम की इस श्रद्धा और अभिमानशून्यता को देखकर ऋषि बोले कि हे सत्यकाम जाबाल!

तुम्हें सम्पूर्ण विद्या का उपदेश मिल गया है। तुम्हारे लिए अब कुछ जानने के लिए शेष नहीं रह गया है।

उपसंहार

औपनिषदिक आख्यानों का सामाजिक दृष्टिकोण से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि उपनिषदों में आख्यानों के माध्यम से निडरता, अभिमानशून्यता, सत्यता, जिज्ञासा तथा बन्धुत्व आदि गुणों की शिक्षा प्राप्त होती है। नचिकेता जैसे बालक द्वारा यम से बिना किसी भय के ब्रह्म के विषय में संवाद तथा सत्यकाम का गुरु के समक्ष यथार्थ बोलना यह सन्देश देता है कि व्यक्ति को किसी भी परिस्थिति में सत्य का त्याग नहीं करना चाहिए।

द्वितीय अध्याय

प्रमुख उपनिषदों के आख्यानों का सांस्कृतिक पक्ष

संस्कृति भारतवर्ष का अभिन्न अंग है। भारत देश की वह संस्कृति ही है जिसके कारण इस देश की प्रसिद्धि दूर-दूर के देशों में फैली है। आध्यात्मिकता, विश्वबन्धुत्व, भाईचारा, गुरु-शिष्य परम्परा, अतिथि-सत्कार, सहनशीलता, धर्मनिरपेक्षता आदि अनेक ऐसी विशेषताएँ हैं जिन्होंने इस देश को अन्य देशों से भिन्न बनाया है। दूसरे देशों के दार्शनिकों, चिन्तकों, समाजशास्त्रियों और लेखकों ने भारतीय संस्कृति के अनेक पक्षों को अनेक प्रकार से अपने-अपने विचारों में अभिव्यक्त किया है। जब भी बाहर से कोई यात्री भारत के दर्शन के लिए आया है तो उसने यहाँ पर निवास करने के बाद एक सन्तुष्टि का अनुभव किया है। योग, ध्यान, पूजा, उपासना, समर्पण आदि ऐसे अनेक पक्ष हैं जो वैश्विक स्तर पर भारत की एक अद्वितीय व अनुपम छवि को प्रस्तुत करते हैं। ये ही तत्त्व वेदों, उपनिषदों व गीता आदि सुप्रसिद्ध भारतीय ग्रन्थों में उपलब्ध हैं। योग को बड़े अच्छे तरीके से पारिभाषित करते हुए कठोपनिषद् कहता है-

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।

बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहु: परमां गतिम्।[124]

शम और दम अर्थात् इन्द्रियों व मन को वश में करके ही मनुष्य अपने अन्दर देख पाने में समर्थ हुआ है और वही योगी कहलाया है। अपने भीतर देखने का यह उपाय भारतीय संस्कृति के अद्वितीय ग्रन्थ व ज्ञानकाण्ड के प्रतीक उपनिषदों में ही प्राप्त हो सकता है। इस अध्याय में उपनिषदों के विभिन्न आख्यानों में वर्णित सांस्कृतिक पक्ष को ही व्याख्यायित किया जाएगा।

२.१ अङ्गिरा-शौनक आख्यान (मुण्डकोपनिषद्)

इस उपनिषद् के द्वितीय खण्ड के प्रारम्भ में गुरु पराविद्या के स्वरूप का वर्णन करते हैं-

तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात्पावकाद् विस्फुलिङ्गा:

सहस्रश: प्रभवन्ते सरूपा:।

तथाक्षराद् विविधा: सोम्य भावा:

प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति॥[125]

---

[124] कठोपनिषद् २.३.१०

[125] मुण्डकोपनिषद् २.१

परा विद्या के विषय में सत्य यह है कि जिस प्रकार तीक्ष्ण रूप से जलती हुई अग्नि में से एक साथ अनेक चिंगारियाँ निकलती हैं और फिर उसी अग्नि में विलीन हो जाती है। उसी प्रकार इस अविनाशी व नित्य ब्रह्म से नाना प्रकार के भूतगण, जीव व प्राणी उत्पन्न होते हैं, इस सृष्टि में रहकर अनेक प्रकार के कार्यों को करते हुए अपना सम्पूर्ण भौतिक जीवन बिताने के बाद फिर पुन: उसी ब्रह्म में विलीन हो जाते हैं।

अग्नि का उदाहरण देकर इस सृष्टि के स्वरूप को उपनिषद् में वर्णित किया गया है। अग्नि के अच्छी प्रकार से जलने पर उसमें से निकलने वाली तरंगे वास्तव में उस मूल अग्नि का ही रूप होती हैं, जो कुछ समय के लिए अपने रूप में रहती हैं और उसके बाद दोबारा अग्नि में ही लीन हो जाती हैं। ठीक वैसी ही स्थिति समस्त जीवों की भी है। सभी जीव अपने-अपने रूप में एक निश्चित समय के लिए रहते हैं और आयु पूर्ण होने पर पुन: उसी सृष्टि में समाहित हो जाते हैं।

दिव्यो ह्यमूर्त: पुरुष: सबाह्याभ्यान्तरो ह्यज:।

अप्राणो ह्यमना: शुभ्रो ह्यक्षरात् परत: पर:।।[126]

एतस्माज्जायते प्राणो मन: सर्वेन्द्रियाणि च।

---

[126] मुण्डकोपनिषद् २.२

खं वायुर्ज्योतिराप: पृथिवी विश्वस्य धारिणी॥[127]

ब्रह्म के विषय में बताते हुए गुरु कहते हैं कि वह ब्रह्म दिव्य, बिना किसी आकार का, सभी के अन्दर और बाहर रहने वाला, अजन्मा अर्थात् जन्म आदि के विकारों से रहित, प्राणरहित अर्थात् श्वसनक्रिया न करने वाला, मन से रहित होने के साथ-साथ सर्वथा विशुद्ध है। अपने इन्हीं गुणों के कारण वह अविनाशी जीवात्मा से भी अत्यन्त श्रेष्ठ है।

ब्रह्म की ये सभी विशिष्टताएं प्रत्येक मनुष्य को ज्ञात होनी आवश्यक हैं। इतनी विशेषताएँ एक साथ ब्रह्म के स्वरूप में ही सम्भव हैं। किसी लौकिक व्यक्ति या जीव में इनका होना असम्भव है। इन्हीं विशेषताओं के होने के कारण उस परमात्मा की जीवात्मा से भिन्नता दिखाई देती है।

परमपिता परमेश्वर के प्रतीकस्वरूप प्रकृति के विभिन्न अंगों को बताते हुए वे कहते हैं-

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ

दिश: श्रोत्रे वाग् विवृताश्च वेदा:।

---

[127] मुण्डकोपनिषद् २.३

वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य

पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा॥[128]

अग्नि उस परमेश्वर का मस्तक है। चन्द्रमा और सूर्य दोनों नेत्र हैं। सभी दिशाएं दोनों कान हैं। विस्तृत वेद वाणी है तथा वायु प्राण है और जगत् हृदय है। इसके दोनों पैरों से पृथिवी उत्पन्न हुई है और यही भौतिक जगत् में समस्त प्राणियों के भीतर रहकर उनके अन्तर्मन को जानने वाला अन्तरात्मा है।

यद्यपि वह परमात्मा रूपरहित अर्थात् किसी भी प्रकार के शरीर आदि से रहित है। तथापि यहां पर प्रकृति के विभिन्न अंगों को उसके शरीर के प्रतीक के रूप में वर्णित किया गया है। सूर्य, चन्द्रमा, पृथिवी, तारे, नदियां, पर्वत आदि ये सब भी उस एक शक्ति से ही उत्पन्न हुए हैं। सृष्टि के संचालन में इन सभी का अपना-अपना योगदान है।

तस्मादपि समिधो यस्य सूर्यः

सोमात्पर्जन्य ओषधयः पृथिव्याम्।

पुमान् रेतः सिञ्चति योषितायां

---

[128] मुण्डकोपनिषद् २.४

बह्वी प्रजा: पुरुषात् सम्प्रसूता:॥[129]

उसी एक सर्वशक्तिमान, सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापक परमात्मा से अग्निदेव की उत्पत्ति हुई जिसकी समिधा सूर्य है। सूर्य से सोम की उत्पत्ति हुई, सोम से मेघ उत्पन्न हुए, मेघों द्वारा की गई वर्षा से पृथिवी पर अनेक प्रकार की औषधियां उत्पन्न हुईं। अन्न आदि भी उन्हीं औषधियों के अन्तर्गत आते हैं जिनको खाकर मनुष्य स्वास्थ्य व दीर्घायु को प्राप्त करता है। उन उत्पन्न औषधियों को खाकर मनुष्य के शरीर में बल (वीर्य) की उत्पत्ति हुई फिर उसी वीर्य को पुरुष स्त्री में सिंचित करता है जिससे अगली सन्तान उत्पन्न होती है। सृष्टि का यह क्रम इसी प्रकार निरन्तर चलता रहता है और इसी क्रम के अनुसार सभी प्राणी नियमपूर्वक उत्पन्न हुए हैं।

तस्मादृच: साम यजूंषि दीक्षा

यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च।

संवत्सरश्च यजमानश्च लोका:

सोमो यत्र पवते यत्र सूर्य:।।[130]

---

[129] मुण्डकोपनिषद् २.५

[130] मुण्डकोपनिषद् २.६

उसी एक परमात्मा से ऋग्वेद की ऋचाएं, सामवेद के मन्त्र और यजुर्वेद की श्रुतियों की रचना हुई। उसी से दीक्षा तथा सभी प्रकार यज्ञ आदि अस्तित्व में आए। चार प्रकार के ऋत्विज होता, अधवर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा भी उसी से बने तथा दक्षिणा भी उसी से बनी। काल के क्रम में संवत्सर, यजमान, सभी प्रकार के ऊर्ध्वलोक (भू:, भुव:, स्व:, मह:, जन:, तप:, सत्यम्) और अधोलोक (अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल) आदि सभी उसी से बने हैं, जहाँ तक सूर्य अपनी गर्मी और चन्द्रमा अपना प्रकाश फैलाता है।

'ऋचा' शब्द को यहाँ पर जानना महत्वपूर्ण है। सर्वप्रथम वेदों का ज्ञान चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा को प्राप्त हुआ। उन ऋषियों से वेदों की वाणी के सम्बन्धित होने के कारण ही वेदमन्त्रों को ऋचाएं कहा जाता है। लेखन रूप में प्राप्त होने से पूर्व ये मन्त्र कण्ठस्थ किए जाते थे। गुरु, जिसने अपने अध्ययनकाल में वेदमन्त्रों को याद किया हुआ होता है, वे अपने शिष्यों को उसी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए कण्ठस्थ कराते हैं। इसी कारण वेदमन्त्रों को श्रुति कहा गया है।

तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूता

साध्या मनुष्या: पशवो वयांसि।

प्राणापानौ व्रीहियवौ तपश्च

श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च॥[131]

उसी एक परमात्मा से अनेक प्रकार की मानसिकताओं से युक्त भाँति-भाँति के मनुष्य, देवता, पशु व पक्षी आदि अस्तित्व में आए। जिनकी समष्टि से ही इस सम्पूर्ण सृष्टि का संचालन होता है। ये सभी जीव जन्तु परस्पर एक दूसरे से मिले हुए हैं और सभी एक दूसरे पर आश्रित हैं। एक भी प्राणी दूसरे की अनुपस्थिति में नहीं रह सकता है। ये सभी एक दूसरे का भक्षण करके अपना जीवन यापन करते हैं। इसे क्रम को जीव विज्ञान में खाद्य श्रृंखला कहा गया है।

पाँच प्रकार के प्राण अर्थात जैसा भारतीय दर्शन में उल्लिखित है[132] प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान ये सब भी उसी एक शक्ति से निसृत हुए हैं। मानव-शरीर के लिए उक्त पाँचों प्राण महत्त्व रखते हैं। शरीर में इनमें से एक की भी अनुपस्थिति होने पर शारीरिक क्रियाओं का संचालन नहीं हो पाता।

विभिन्न प्रकार की वनस्पति जैसे धान, गेहूँ, ज्वार, मक्का, बाजरा तथा दलहन व तिलहन आदि सभी जो भूमि पर उत्पन्न होते हैं ये सब उस आदिशक्ति की प्रेरणा से ही

---

[131] मुण्डकोपनिषद् २.७

[132] पञ्चवायव: प्राणापानोदानव्यानसमाना: इति। वेदान्तसार:

उत्पन्न होते हैं। मानव-शरीर के पोषण के लिए इनका उत्पन्न होना अतीव आवश्यक है। इनकी अनुपस्थिति में मानव का शरीर मृतप्राय हो जाएगा।

तप, श्रद्धा, सत्य व ब्रह्मचर्य आदि सब भी उसी एक शक्ति की अभिव्यक्ति है। ये सभी तत्व मानव के जीवन के कल्याण के लिए आवश्यक हैं। जहाँ तप से मनुष्य का शरीर अनेक प्रकार की परिस्थितियों को सहने के लिए सक्षम होता है, वहीं श्रद्धा से वह ईश्वर में अपने विश्वास का संवर्द्धन करता है। सत्य और ब्रह्मचर्य का पालन व्यक्ति को सत्य का यथार्थ ज्ञान कराने में सहायक होता है।

अत: समुद्रा गिरयश्च सर्वे

ऽस्मात्स्यन्दन्ते सिन्धव: सर्वरूपा:।

अतश्च सर्वा ओषधयो रसश्च

येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा॥[133]

इस पृथ्वी पर जितने भी पर्वत, नदियाँ, समुद्र और झीलें हैं सभी उसी से उत्पन्न हुए हैं। इन सब में उपस्थित जल यद्यपि अनेक प्रकार का होता है, तथापि उसका मूल स्रोत एक ही है। पर्वतों पर उगने वाली अनेक प्रकार की वनस्पतियाँ जो शरीर के रोगों को दूर

[133] मुण्डकोपनिषद् २.९

करके पोषण प्रदान करने वाली हैं, वे भी उसी शक्ति व सामर्थ्य से उत्पन्न होती हैं और वह परमात्मा उन सभी नीरोग व पुष्ट शरीरों के अन्दर विद्यमान है।

पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम्। एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सोम्य।।[134]

उपनिषद् के अन्त में गुरु शिष्यको बताते हैं कि उपरोक्त सत्य, कर्म व तप आदि तत्वों के उत्पादक रूप वह एक ब्रह्म ही है। जो मनुष्य इस जीवन में उस को यथार्थ रूप में जान लेता है, वह इस जीवन में अपनी अविद्या रूपी गाँठ को खोल लेता है तथा उसका मानव-जीवन सफल हो जाता है।

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं

शरं ह्युपासानिशितं संधयीत।

आयम्य तद् भावगतेन चेतसा

लक्ष्य तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि॥[135]

---

[134] मुण्डकोपनिषद् २.१०

[135] मुण्डकोपनिषद् २.२.३

यहाँ पर गुरु शिष्य को धनुष की डोरी का उदाहरण देकर मुक्ति को प्राप्त करने हेतु प्रेरित करता हुआ कहता है कि उपनिषद् में वर्णित ज्ञान को धनुष के रूप में मानकर और उसको उपासना रूपी श्रम के द्वारा तीक्ष्ण करके बाण चढ़ाकर तथा फिर चित्त के द्वारा उस बाण को खींचकर हे प्रिय शिष्य! उस एक परमात्मा को लक्ष्य मानकर बेधे। मानव को अपना सम्पूर्ण ज्ञान एकाग्र होकर उस एक परमात्म शक्ति को प्राप्त करने में लगाना चाहिए। आगे धनुष के विभिन्न अंगों को परमात्मा प्राप्ति के अनेक साधनों के प्रतीक के रूप में कहा गया है-

प्रणवो धनु शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।

अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥[136]

प्रणव अर्थात् ओ३म् ही धनुष है व आत्मा ही बाण है और वह परमेश्वर ही उस बाण का निर्धारित लक्ष्य है जो कि आलस्य व प्रमादादि दोषों से रहित मनुष्य के द्वारा ही बींधा जाने योग्य है। बेधक को भी यहाँ पर उपनिषद् निर्देश देता है कि वह भी उस लक्ष्य को बेधने के पश्चात् उसी में लीन हो जाए।

एक कुशल धनुर्धारी तीक्ष्ण बाण को धनुष पर चढ़ाकर अपने निर्धारित लक्ष्य को बेधने के लिए कृतसंकल्प होता है। वैसे ही मनुष्य यदि अपने लौकिक जीवन के लक्ष्य

---

[136] मुण्डकोपनिषद् २.२.४

अर्थात् ब्रह्म की प्राप्ति चाहता है तो वह अपनी आत्मा को बाण की भांति अभ्यास के माध्यम से तीक्ष्ण करके ओ३म् रूपी धनुष पर चढ़ाकर अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

यस्मिन् द्यौ: पृथिवी चान्तरिक्ष-

मोतं मन: सह प्राणैश्च सर्वै:।

तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या

वाचो विमुञ्चथामृतस्यैष सेतु:॥[137]

अर्थात् जिस एक परमात्मा में द्युलोक, पृथ्वीलोक व अन्तरिक्षलोक आदि सभी प्राणों के साथ समाविष्ट हैं तथा जिसमें मन भी एकत्वरूप में गुँथा हुआ है। उसी एक आत्मरूप परमात्मा को सभी में जानना चाहिए और वही अमृत का सेतु अर्थात् अमरत्व को देने वाला है।

वेदों में यद्यपि चौदह लोकों की बात कही गई है। जिनमें सात लोक ऊपर के और सात लोक नीचे के होते हैं। परन्तु मुख्य रूप से तीन ही लोक बताए गए हैं जिनका वर्णन यहाँ पर किया गया है। सत्य तो यह है कि लोकों की संख्या चाहे चौदह मानी जाए

[137]मुण्डकोपनिषद् २.२.५

अथवा सात, ये सभी प्राणशक्ति से युक्त होकर उस एक परमात्म-शक्ति से युक्त होते हैं। इन तीनों में ही अलग-अलग प्रकार के जीवों का निवास होता है और तीनो ही पर्यावरण के लिए आवश्यक हैं।

अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्य:

स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमान:।

ओम्मित्येवं ध्यायथ आत्मानं

स्वस्ति व: पाराय तमस: परस्तात्॥[138]

जिस प्रकार एक रथ के पहिए के सभी अरे एक केन्द्र में जुड़े रहते हैं उसी प्रकार मानव के शरीर की सभी नाडियाँ एक ही केन्द्र में स्थित रहती हैं। वह एक ही परमात्मा जो कि अनेक प्रकार से स्वयं को अभिव्यक्त करता है, मध्यभाग में संचरण करता है। वह 'ओ३म्' नाम के द्वारा ही ध्यान करने योग्य है जो मानव को अज्ञान के अन्धकार से ज्ञान के प्रकाश में लाने वाला है।

रथ के पहिए के माध्यम से मानव-शरीर की रचना को यहाँ पर समझाया गया है। विज्ञान के अनुसार मानव के शरीर में २०६ हड्डियों के साथ हजारों नाडियां होती

[138] मुण्डकोपनिषद् २.२.६

हैं। शरीर के क्रियासंचालन में प्रत्येक हड्डी तथा नाड़ी का अपना-अपना योगदान होता है। तथापि यह सत्य है कि वे सभी किसी एक केन्द्र पर जुड़ी होती हैं। उसी एकत्व को ज्ञान के प्रकाश के लिए आवश्यक माना गया है।

वह परमात्मा सभी प्राणियों को जानने वाला है। गुरु कहते हैं-

य: सर्वज्ञ: सर्ववित् यस्यैष महिमा भुवि।

दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योमन्यात्मा प्रतिष्ठित:॥[139]

यहाँ पर उस ईश्वर को दो प्रकार से जानने वाला बताया गया है। एक तो वह सभी को एक साथ जानता है और दूसरे वह एक-एक को भिन्न-भिन्न प्रकार से जानता है। इस प्रकार वह प्रत्येक प्राणी के द्वारा सम्पादित किए जाने वाले प्रत्येक क्रियाकलाप को जानने वाला है। वह अपने मन में क्या विचार करता है? उसके अन्त:करण में किस समय क्या चल रहा है? किस के साथ वह कैसा व्यवहार करेगा ये सभी बातें उस ईश्वर को पहले ही ज्ञात हो जाती हैं। वह दिव्य प्रकाशस्वरूप परमात्मा ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित है।

सर्वज्ञ तथा सर्ववित् ये दोनों ही भूमिकाएं उस आदिशक्ति के लिए आवश्यक हैं। सामान्यत: उपनिषद् के पाठक इन दोनों शब्दों का एक ही अर्थ ले लेते हैं। उनका

---

[139] मुण्डकोपनिषद् २.२.७

अधिकांश ध्यान सर्व पद पर ही जाता है। परन्तु इन दोनों पदों में विद्यमान प्रत्यय यह संकेत करते हैं कि दोनों पदों के अर्थ अलग हैं।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छद्यन्ते सर्वसंशया।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥[140]

गुरु अपने शिष्य को उस परमात्मा की प्राप्ति हो जाने की स्थिति के विषय में बताते हुए कहते हैं कि उस परमात्मा के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान हो जाने पर मानव के अन्त:करण की सभी गाँठे खुल जाती है। यहाँ पर गाँठों से अभिप्राय अनेक प्रकार की शंकाएं हैं जो मानव के मस्तिष्क में अनुत्तरित ही रहती हैं लेकिन ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान होने पर उन सभी शंकाओं का समाधान हो जाता है।

साथ ही उस व्यक्ति के द्वारा भौतिक जगत् में किए गए सभी कर्म भी क्षीण हो जाते हैं और वह स्वयं भी उस ब्रह्म में लीन हो जाता है।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं

नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्नि:।

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं

---

[140] मुण्डकोपनिषद् २.२.८

तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥[141]

गुरु कहते हैं कि उस ब्रह्म के संसार में न तो प्रकाश के लिए सूर्य की आवश्यकता होती है और न ही शीतलता के लिए चन्द्रमा की आवश्यकता होती है। भौतिक जगत् में कार्यशील विद्युत वहाँ अकर्मण्य हो जाती है और अग्नि की उपस्थिति का भी कोई औचित्य नहीं रहता। उसी एक ब्रह्म की उपस्थिति होने से वहाँ सब कुछ ब्रह्ममय होता है और उसी से प्रेरणा पाकर सभी भूत इस जगत् में अभिव्यक्त होते हैं। उस परमात्मा का प्रकाश इतना असीम है कि उसके क्षुद्रतम अंश से यह सम्पूर्ण सृष्टि प्रकाशमय हो जाती है। सूर्य, चन्द्रमा, तारे, पर्वत, नदियाँ, झीलें, सभी लोक उसी की प्रेरणा से अपने अस्तित्व में बने हुए हैं।

२.२ मानव – परमात्मा आख्यान (ऐतरेयोपनिषद्)

स जातो भूतान्यभिव्यैख्यत् किमिहान्यं वावदिषदिति।

स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततममपश्यत्। इदमदर्शमिति॥[142]

ऐतरेयोपनिषद् के इस आख्यान में पूर्व में परमात्मा के द्वारा सृष्टि की रचना का वर्णन है। परमात्मा ने अपने अभिव्यक्त रूप में अनेक तत्वों व पदार्थों की रचना की।

---

[141] मुण्डकोपनिषद् २.२.१०

[142] ऐतरेयोपनिषद् १.३.१३

उसके पश्चात् उस सृष्टि को देखने के लिए जब मनुष्य का आविर्भाव हुआ तो उसने यहाँ आकर अपने चारों ओर देखा तो उसको इस अद्भुत रचना को देखकर आश्चर्य हुआ और उसने विचार किया कि इस अनुपम कृति का रचनाकार कौन है? अर्थात् यहाँ पर उस परमात्मा के अतिरिक्त कौन दूसरा विद्यमान है? फिर जब उसके समक्ष अन्तर्यामी पुरुष प्रकट हुआ तो उसको उसको यह विश्वास हुआ कि मैं धन्य हूँ कि मैंने उस परम् दिव्य पुरुष के दर्शन कर लिए।

एष ब्रह्मैष इन्द्र एष प्रजापतिरेते सर्वे देवा इमानि च पञ्च महाभूतानि पृथिवी वायुराकाश आपो आपो ज्योतीर्षीत्येतानीमानि च क्षुद्रमिश्राणीव बीजानीतराणि चेतराणि चाण्डजानि च जारुजानि च स्वेदजानि चोद्भिज्जानि चाश्वा गाव: पुरुषा हस्तिनो यत्किञ्चेदं प्राणि जङ्गमं च पतत्रि च यच्च स्थावरं सर्वं तत्प्रज्ञानेत्रम्। प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं प्रज्ञानेत्रो लोक: प्रज्ञा प्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म॥[143]

यह ब्रह्मा, इन्द्र, प्रजापति, सभी देवता, यह पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज आदि पाँच महाभूत तथा ये छोटे-छोटे मिले हुए से बीजरूप समस्त प्राणी और इनसे भिन्न दूसरे भी अण्डे से उत्पन्न होने वाले, जेर से उत्पन्न होने वाले, पसीने से उत्पन्न होने वाले, जमीन को फोड़कर उत्पन्न होने वाले तथा घोड़े, हाथी, सभी मनुष्य और जो कुछ

[143] ऐतरेयोपनिषद् ३.१.३

भी जगत् है, जो कोई भी पंखों वाला और चलने-फिरने वाला है और नहीं चलने वाला प्राणिसमुदाय है, वह सब परमात्मा से ही शक्ति पाकर अपने-अपने कार्य में समर्थ होते हैं उस प्रज्ञानस्वरूप पुरुष के ही आश्रित यह समस्त जगत् है। यह ब्रह्माण्ड प्रज्ञानस्वरूप परमात्मा से ही ज्ञानशक्तियुक्त है। परमात्मा ही सबका आधार है। और प्रज्ञान ही ब्रह्म है।

स एतेन प्रज्ञेनात्मनास्माल्लोकादुत्क्रम्यामुष्मिन्स्वर्गे लोके सर्वान् कामानाप्लवामृत: समभवत्समभवत्॥[144]

जिस व्यक्ति ने परमात्मा के इस स्वरूप को जान लिया, वह परमात्मस्वरूप होकर, इस लोक से प्रयाण करके अर्थात् अपने भौतिक शरीर का त्याग करके दूसरे लोक में जाकर प्रज्ञानस्वरूप ब्रह्म के साथ होकर सम्पूर्ण दिव्य लोकों को प्राप्त करके अमर हो गया अर्थात् सदा के लिए जन्म और मृत्यु के चक्र से छूट गया।

२.३ गुरु-शिष्य संवाद (तैत्तिरीयोपनिषद्)

तैत्तिरीयोपनिषद् की प्रथम वल्ली 'शीक्षावल्ली' में प्रारम्भ में आचार्य और शिष्य दोनों मिलकर परमात्मा से प्रार्थना करते हुए कहते हैं-

144 ऐतरेयोपनिषद् ३.१.४

ॐ शं नो मित्र: शं वरुण:। शं नो भवत्वर्यमा। शं न इन्द्रो बृहस्पति:। शं नो विष्णुरुरुक्रम:। नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि। ऋतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्। ॐ शान्ति: शान्ति: शान्ति:॥[145]

हमारे लिए दिन और प्राण के अधिष्ठाता शान्तिप्रद हों। रात्रि और अपान के स्वामी हमारे लिए कल्याणकारक हों। नेत्र और सूर्यमण्डल के स्वामी भी शुभ को करने वाले हों। वाणी व बुद्धि के स्वामी बृहस्पति शान्ति को प्रदान करने वाले हों। विष्णु, जो पैरों के अधिष्ठाता है, हमारे लिए कल्याणकारी हों। ब्रह्मा के लिए नमस्कार है। वायुदेव के लिए नमस्कार है। तुम ही प्रत्यक्ष ब्रह्म हो और मैं तुम को प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूँगा। तुम को ऋत के नाम से पुकारुंगा और तुम्हीं को सत्य भी कहूँगा। अत: आप हम दोनों गुरु औरा शिष्य की रक्षा करें।

आगे गुरु शिष्य को शीक्षा के विषय में बताते हैं-

अथ शीक्षां व्याख्यास्याम:। वर्ण: स्वर:। मात्रा बलम्। साम संतान:। इत्युक्त: शीक्षाध्याय:॥[146]

---

[145] तैत्तिरीयोपनिषद् १.१.१

[146] तैत्तिरीयोपनिषद् १.२.१

अब मैं तुम्हें शिक्षा के विषय में विस्तार से समझाता हूँ। वर्ण, स्वर,मात्रा, बल, साम अर्थात् वर्णों का क्रम से उच्चारण करना या गाना और सन्धि ये सभी वेदोच्चारण के शिक्षा नामक अध्याय में आते हैं।

गुरु कहते हैं कि वर्णों को भली-भांति जानते हुए उनका सही उच्चारण करना चाहिए। यहाँ पर यह ध्यातव्य है कि स के स्थान पर श तथा व के स्थान पर ब का उच्चारण नहीं किया जाना चाहिए। वर्णों के उच्चारण के समय स्वर का भी ध्यान रखना आवश्यक है। वर्ण के साथ किस समय ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत में से कौन सा स्वर लगना है? यह भी देखना चाहिए। मन्त्रों के उच्चारण में स्वरभेद होने से उनका अर्थ बदल जाता है और अशुद्ध स्वर का उच्चारण होने पर बोलने वाला अनिष्ट का भागी होता है। यथा-

दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।

स वाग्वज्रो भूत्वा यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वर्तोऽपराधात्॥[147]

अर्थात् स्वर या वर्ण का ठीक से उच्चारण न करने के कारण वह शब्द अन्य अर्थ को बताने वाला होता है और यजमान को हानि पहुँचाता है। जैसे 'इन्द्रशत्रु' में स्वर की त्रुटि होने से वृत्रासुर स्वयं ही इन्द्र के द्वारा मारा गया।

---

[147] पतञ्जलि महाभाष्य

ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत आदि मात्राओं को भी ध्यान में रखना चाहिए। बल का अर्थ है 'प्रयत्न'। व्याकरण में प्रयत्न दो प्रकार के बताए गए हैं- आभ्यान्तर और वाह्य। आभ्यान्तर पाँच प्रकार हैं- स्पृष्ट, ईषत्-स्पृष्ट, ईषत्-विवृत, विवृत और संवृत।[148] वाह्य ग्यारह प्रकार के हैं- विवार, स्वार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित।[149] इन सभी का ध्यान वेदमन्त्रोच्चारण के समय आवश्यक है।

वर्णों का समवृत्ति से उच्चारण ही साम है। और संतान का अर्थ है–सन्निधि। स्वर, व्यञ्जन, विसर्ग और अनुस्वार आदि का ठीक से उच्चारण करना चाहिए।

इस प्रकार ये सब बिन्दु शिक्षा के अन्तर्गत आते हैं।

२.४ **बृहदारण्यकोपनिषद्**

बृहदारण्यकोपनिषद् में वर्णित अनेक आख्यानों में संस्कृति से सम्बन्धित अनेक ऐसी शिक्षाएं हैं जो मानव को उसके सांस्कृतिक उत्थान के लिए प्रेरित करती हैं। जीवन में अच्छे कर्म करना, निष्काम कर्मयोग की भावना, मुक्ति की इच्छा आदि शिक्षाएं इस उपनिषद् में निहित हैं।

---

[148] लघुसिद्धान्तकौमुदी

[149] लघुसिद्धान्तकौमुदी

पाप और पुण्य दो ऐसे मार्ग उपनिषदों में वर्णित हैं जो मानव को अलग-अलग मार्गों की ओर लेकर जाते हैं। पाप से युक्त कर्म करके जहाँ मनुष्य दु:ख और सन्ताप को भोगता है वहीं पुण्य कर्म उसको मुक्ति का मार्ग बताते हैं। इसी विशेषता के आधार पर उपनिषद् कहता है-

पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पाप: पापेन।[150]

अर्थात् पुण्य कर्म करके मनुष्य पुण्य की ओर अग्रसर होता है और पाप करके पाप के गर्त में गिरता है। संस्कृति मानव यह निर्देश करती है कि वह अपने जीवन में कोई ऐसा कर्म न करे जिससे उसको दूसरों की आलोचना का शिकार होना पड़े। मानव द्वारा अनभिज्ञता में किया गया एक कर्म जीवनभर उसके दु:ख का कारण बन जाता है। ऐसे दुष्ट कर्मों से सदैव सावधान रहना चाहिए।

आज समाज में लोग दुर्गुणों को तीव्रता से अपना लेते हैं। सांस्कृतिक व नैतिक गुणों का मानव में ह्रास होने लगा है। लोग एक दूसरे के प्रति बहुत ही असंवेदनशील हो गए हैं। एक व्यक्ति दूसरे की सफलता से ईर्ष्या करने लगा है। एक दूसरे के सामने भले ही कोई शुभचिंतक बनता हो परन्तु पीठ के पीछे वह उसी की बुराई करके उसके काम बिगाड़ता है। ऐसे पापयुक्त कार्यों से प्रत्येक मनुष्य को बचना चाहिए।

---

[150] कठोपनिषद् ३.२.१३

पुण्य कर्म करने से मानव को आन्तरिक शान्ति मिलती है। ऐसा मनुष्य सदैव दूसरों का हित सोचता है। वह अन्यों की उन्नति से ईर्ष्या न करके उससे प्रेरणा लेकर आगे बढ़ता है। जीवन में मनुष्य अनेक ऐसे आदर्श लोगों के दर्शन करता है जिनसे उसको जीवन में अच्छे कर्म करने की प्रेरणा मिलती है। ऐसे लोगों को वह अपने प्रेरक मानकर सदैव पुण्यकर्म करता है।

दो प्रकार का वैदिक धर्म –

इस उपनिषद् में वेद के द्वारा निर्देशित दो प्रकार के कर्मो का वर्णन आया है। वेद मनुष्य के द्वारा किए जाने वाले कर्मों को दो कोटियों में विभाजित करते हैं। जिसा स्मृति भी कहती है-

द्विविधं कर्म वैदिकम्॥[151]

जो इस प्रकार हैं-

प्रवृत्ति प्रधान

ऐसे कर्म लोक में मनुष्य की आसक्ति को बढ़ाते हैं। आजीविका कमाना, दान करना, बच्चों को शिक्षा प्रदान करना, तीन प्रकार की एषणाएं (पुत्रेषणा, वित्तेषणा,

[151] मनु. १२.८८

लोकेषणा), भवन निर्माण कराना, समाज में अपनी विशेष पहचान बनाना, लोगों से अच्छे सम्बन्ध बनाना आदि ऐसे कर्म हैं जो समाज में मनुष्य की छवि को अच्छा बनाते हैं और उसको जीवन में अच्छे कार्य करने हेतु प्रेरित करते हैं।

निवृत्ति प्रधान

मोक्ष की प्राप्ति के उद्देश्य से किया गया कोई भी कर्म या दूसरे शब्दों में जीवन के यथार्थ को जानने हेतु की गई जिज्ञासा, जो मनुष्य को संसार के कुचक्र से मुक्त करता हो, निवृत्ति प्रधान कर्म कहलाता है। ऐसे कर्म पूर्णतया सांसारिक कर्मों से भिन्न होते हैं। मानव अपने सांसारिक दायित्वों को पूर्ण करता हुआ जीवन के वास्तविक सत्य को जानने का प्रयास करता है। वह यह जानने लगता है कि उसके सभी लौकिक सम्बन्ध क्षणिक तथा कालिक हैं परन्तु परमशक्ति के साथ उसका सम्बन्ध सदैव के लिए रहने वाला है। ऐसा कर्म मानव को दीर्घकाल तक रहने वाली शान्ति को प्रदान करता करता है।

नाम, रूप वा कर्म का समुदाय

यहाँ पर नाम रूप तथा कर्म के सम्बन्ध को बताया गया है-

त्रयं वा इदं नाम रूपं कर्म तेषां नाम्नां वागित्येतदेषामुक्थमतो हि सर्वाणि नामान्युत्तिष्ठन्ति॥[152]

नाम, रूप व कर्म इन तीनों के समुदाय को 'वाक्' के द्वारा बताया जाता है। वाक् ही वह माध्यम है जो इन तीनों के आधार पर किसी भी वस्तु की संज्ञा को निर्धारित करता है। वाक् ही ब्रह्म की एक प्रेरणा-शक्ति है जो किसी भी वस्तु या स्थिति को व्याख्यायित कर पाने में समर्थ है। वाक् से ही समस्त नामों का आविर्भाव हुआ है। अत: वाक् को ही मुख्य रूप से जानना चाहिए।

इस त्रय की उत्पत्ति से पूर्व यह जगत् अव्याकृत अवस्था में था। जिस प्रकार एक बीज उपयुक्त समय आने पर वृक्ष के रूप में परिणत हो जाता है और उसके अंग आदि बन जाते हैं, उसी प्रकार अव्याकृत जगत् भी अपनी प्रारम्भिक अवस्था को छोड़कर नाम, रूप व कर्म से युक्त हो जाता है। यही अवस्था अव्याकृत से परिणत होकर व्याकृत अर्थात् नाम, रूप व कर्म युक्त कहलाती है। अव्याकृतावस्था को आचार्य शंकर भाष्य करते हुए लिखते हैं-

---

[152] बृहदारण्यकोपनिषद् १.६.१

अतो विलक्षणोऽनामरूपकर्मात्मकोऽद्वयो नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावोऽपि क्रियाकारकफलभेदादिविपर्ययेणावभासते॥[153]

आत्मा नाम, रूप व कर्म से भिन्न होकर भी अद्वितीय, तथा नित्य, शुद्ध-बुद्ध और मुक्तस्वरूप होकर भी क्रिया-कारक और और फल-भेदादि विपरीत भाव से प्रतीत होता है।[154]

श्रुति चारों वर्णों की उत्पत्ति का निर्देश करते हुए कहती है-

ब्रह्म का अस्तित्व-

सृष्टि के आरम्भ में एकमात्र ब्रह्म की उपस्थिति का वर्णन करते हुए श्रुति कहती है-

ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्तदात्मानमेवावेत्। अहं ब्रह्मास्मीति॥[155]

सबसे पहले ब्रह्म की ही सत्ता थी। उसने प्रारम्भ में स्वयं को ही जाना कि 'मैं ब्रह्म हूँ'। इसी तथ्य को शास्त्रों में महावाक्य के रूप में स्वीकार किया गया है।[156] उस ब्रह्म को

---

[153] बृहदारण्यकोपनिषद् शां. पृ. ३७

[154] पूर्ववत्

[155] बृहदारण्यकोपनिषद् १.४.१०

[156] अहं ब्रह्मास्मि॥ बृहदारण्यकोपनिषद् १.४.१०

बाद के जिन लोगों ने भी यथार्थ रूप में जाना वे स्वयं भी ब्रह्म हो गए। ऋषि-मुनि, मनुष्य आदि सभी उस ब्रह्म के यथार्थ स्वरूप को जानकर ब्रह्म के रूप में परिणत हो गए।

आचार्य शंकर 'ब्रह्म' के विषय में स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि

ब्रह्मापरम्, सर्वभावस्य साधयत्वोपपत्ते:। न हि परस्य ब्रहूमण:

सर्वभावापत्तिर्विज्ञानसाध्या॥[157]

यहाँ पर ब्रह्म का अर्थ अपरबह्म लेना चाहिए क्योंकि उसी का सर्वरूप होना विज्ञान को साध्य हो सकता है। परब्रह्म का सर्वभाव को प्राप्त होना विज्ञानसाध्य की परिधि में नहीं आता। इसीलिए 'ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्' में ब्रह्म पद अपरब्रह्म का वाचक है।[158]

क्षत्रिय की उत्पत्ति

आरम्भ में ब्रह्म अकेला होने के कारण कविभूतियुक्त कर्म करने में समर्थ नहीं हुआ और उसने क्षत्र नामक प्रशस्त रूप की उत्पत्ति की।

---

[157] बृहदारण्यकोपनिषद् शांकरभाष्य् पृ. २४२

[158] बृहदारण्यकोपनिषद् शांकरभाष्य् पृ. २४२

तच्छ्रेयोरूपमत्यसृजत क्षत्रं यान्येतानि देवत्रा क्षत्राणीन्द्रो वरुण: सोमो रुद्र: पर्यन्यो यमो मृत्युरीशान इति॥[159]

ब्रह्म ने उसके पश्चात् क्षत्र की रचना की और देवताओं में जो क्षत्रिय इन्द्र, वरुण, सोम, रुद्र, मेघ, यम, मृत्यु और ईशानादि हैं उनको उत्पन्न किया। इसीलिए क्षत्रिय से उत्कृष्ट कोई नहीं है। राजसूय यज्ञ में क्षत्रिय की महत्ता को बताते हुए कहा गया है कि राजसूय नामक यज्ञ में ब्राह्मण नीचे बैठता है क्षत्रिय को उच्च आसन पर बैठाकर उसकी उपासना करता है। वह वास्त्व में क्षत्रिय में ही अपने यश को स्थापित करता है। जो ब्रह्म है, वह क्षत्रिय की योनि है।[160] उपनिषद् कहता है कि राजा यद्यपि उत्कृष्टता को प्राप्त होता है तो भी राजसूय के अन्त में वह ब्राह्मण का ही आश्रय लेता है। अत: जो क्षत्रिय ब्राह्मण की हिंसा करता है वह अपनी ही योनि का नाश करता है। जैसे श्रेष्ठ व्यक्ति की हिंसा करके पुरुष पापी होता हैं वैसे ही वह ऐसा कर्म करके पाप का भागी बनता है।

वैश्यजाति की उत्पत्ति

इसके पश्चात् क्रमश: वैश्य जाति की उत्पत्ति के विषय में बताते हैं-

---

[159] बृहदारण्यकोपनिषद् १.४.११

[160] सैषा क्षत्रस्य योनिर्यद्ब्रह्म॥ बृहदारण्यकोपनिषद् १.४.११

स नैव व्यभवत्स विशमसृजत यान्येतानि देवजातानि गणश आख्यायन्ते वसवो रुद्रा आदित्या विश्वेदेवा मरुत इति॥[161]

वह ब्रह्म विभूतियुक्त कर्म करने में समर्थ न नहीं हुआ और इसी कारण उसने वैश्यजाति की रचना की। जो वसु, रुद्र, आदित्य, विश्वदेव और मरुत् आदि देवगण कहे जाते हैं, इन सब को उत्पन्न किया। ये सभी वैश्यजाति की श्रेणी में आते हैं।

भाष्य करते हुए आचार्य शंकर लिखते हैं कि

स नैव व्यभवत्, कर्मणे ब्रह्म तथा न व्यभवत्, वित्तोपार्जयितुरभावात्। स विशमसृजत कर्मसाधनवित्तोपार्जनाय। यान्येतानि देवजातानि- स्वार्थे निष्ठा, य एते देवजातिभेदा इत्यर्थः; गणशो गणम्, आख्यायन्ते कथ्यन्ते।[162]

उस ब्रह्म की सृष्टि में धनोपार्जन करने वाले का अभाव था और वह कर्म करने में समर्थ नहीं था, कर्म के साधनभूत धन का उपार्जन करने के लिए उसने वैश्यजाति की रचना की।

---

[161] बृहदारण्यकोपनिषद् १.४.१२

[162] बृहदारण्यकोपनिषद् शांकरभाष्य् पृ. २८८

यहाँ पर 'देवजातानि' शब्द ध्यातव्य है इस पद के 'जात' में जो 'त' है वह निष्ठाप्रत्यय है तथा स्वार्थ में है। जो देवजाति के भेद हैं वे एक- एक करके कहे जाते हैं क्योंकि वैश्य लोग गणप्राय होते हैं। ये प्राय: मिलकर ही धनोपार्जन में समर्थ होते हैं।

शूद्रवर्ण की उत्पत्ति

वर्ण-व्यवस्था के चतुर्थ और महत्त्वपूर्ण स्तम्भ 'शूद्र' की उत्पत्ति के विषय में वर्णन आया है-

स नैव व्यभवत्स शौद्रं वर्णमसृजत पूषणमियं वै पूषेयँ हीदँ सर्वं पुष्यति यदिदं किञ्च॥[163]

इसके बाद भी वह ब्रह्म विभूतियुक्त कर्म करने में समर्थ नहीं हुआ और उसने शूद्रवर्ण की उत्पत्ति की। शूद्र वह है जिस पर उपरोक्त तीनों वर्ण आश्रित हैं। इसके बिना वर्ण-व्यवस्था अपूर्ण है। इस उपनिषद् में इसका अन्य नाम 'पूषा' कहा गया है। सभी का पोषण करने से यह पूषा है। उपनिषद् के भाष्य में भी कहा गया है-

पूषणम्- पुष्यतीति पूषा। इति विशेषतस्तन्निर्दिशति – इयं पृथिवी पूषा॥[164]

आगे कहा गया है-

---

[163] बृहदारण्यकोपनिषद् १.४.१३

[164] बृहदारण्यकोपनिषद् शांकरभाष्य् पृ. २८९

सर्वं पुष्यति यदिदं किञ्च।[165]

अर्थात् सृष्टि में जो कुछ भी जीव हैं उन सबका पोषण यह पूषा करती है।

२.५ यम-नचिकेता आख्यान (कठोपनिषद्)

कठोपनिषद् में यमराज द्वारा दिए गए आत्मज्ञान के वर्णन के समय उन्होंने नचिकेता को 'योग' के विषय में स्पष्ट रूप से बताया था जो संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। मन के साथ पाँचों इन्द्रियों के स्थिर हो जाने पर विकसित होने वाली योग की स्थिति को ही यहाँ पर आगे वर्णित किया गया है-

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्।

अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ॥[166]

इन्द्रियों के ठीक प्रकार से स्थिर हो जाने की स्थिति ही योग कहलाती है। उस समय मनुष्य प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि अनेक दोषों से दूर हो जाता है। जब तक उसकी इद्रियाँ इसी स्थिति में रहती हैं तब तक वह योग की स्थिति में रहता है और जब अपने-अपने कार्यों में लग जाती हैं तो फिर से योग नहीं रहता अत:

---

[165] बृहदारण्यकोपनिषद् शांकरभाष्य् पृ. २८९

[166] कठोपनिषद् २.३.११

योग उदय और अस्त होने वाला है। मानव को यह प्रयास करना चाहिए कि वह अधिक से अधिक समय तक योग की स्थिति में रहे।

अस्तीत्येवोपलब्धव्य: तत्त्वभावेन चोभयो:।

अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्य तत्त्वभाव: प्रसीदति॥[167]

उस परमात्मा के विषय में मनुष्य को अपने अन्त:करण में यह निश्चय करना चाहिए कि वह है और उसको प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा निश्चय करने वाले व्यक्ति के लिए वह परमात्मा वास्तव में तत्त्वभाव से उपस्थित हो जाता है। यहाँ पर विचारों की शक्ति का महत्त्व है। विचारों में मनुष्य ने यदि यह मान लिया कि वह है तो वास्तव में वह किसी न किसी रूप में उपस्थित होकर मनुष्य हेतु प्राप्तव्य हो जाता है।

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिता:।

अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते॥[168]

यहाँ पर यम, नचिकेता को यह बता रहे हैं कि जब मनुष्य के मन में विद्यमान समस्त सांसारिक इच्छाएं व कामनाएं समूल नष्ट हो जाती हैं, अर्थात् भविष्य में उनके होने के आसार नहीं होते तो मनुष्य इच्छाओं से मुक्त हो जाता है। ऐसी स्थिति में

---

[167] कठोपनिषद् २.३.१३

[168]कठोपनिषद् २.३.१४

इच्छाशून्य व्यक्ति मृत्यु को जीतकर अमर हो जाता है और वह ब्रह्म का ठीक प्रकार से अनुभव करने में सफल होता है। जब मनुष्य सांसारिक इच्छाओं से तृप्त हो जाता है, किसी भी प्रकार की कोई कामना शेष नहीं रहती, उसके पश्चात् ही वह परमात्मा को पाने के लिए प्रथम चरण में प्रवेश करता है।

उपसंहार

उपनिषदों में वर्णित आख्यानों में संस्कृति के मजबूत पक्ष को उजागर करने वाले वाले अनेक मन्त्र हैं जो समाज के प्रत्येक मानव को अपने समाज व राष्ट्र की छवि को भली-भाँति समझने में सहायक हैं। सभी प्रमुख उपनिषद् इस बात पर बल देते हैं कि वे अन्य पक्षों के साथ-साथ सांस्कृतिक पक्ष को भी उनके पाठक के समक्ष सारगर्भित रूप में उपस्थित करें। सृष्टि का क्रमश: विकास उपनिषदों में अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया गया है। एक–एक तत्त्व का क्रम से अस्तित्व में आना परमात्मा की एक सुनियोजित नीति को बताता है। चारों वर्णों से मिलकर समाज का निर्माण होता है। उन चारों का ब्रह्म से आविर्भूत होना इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय

प्रमुख उपनिषदों के आख्यानों का नैतिक पक्ष

उपनिषदो में अनेक ऐसे मन्त्र है जो मानव को नैतिकता का संदेश देते है। सामाजिक व्यक्ति के लिए नैतिकता भी उतनी ही आवश्यक है जितनी सामाजिकता। नैतिक गुणो से परिपूर्ण व्यक्ति ही अच्छा सामाजिक व्यक्ति हो सकता हैं। ज्ञानकाण्ड के प्रमुख ग्रन्थ उपनिषद नैतिक मन्त्रों के माध्यम से व्यक्ति को यह सन्देश देते हैं कि उसे जीवन में किस प्रकार की सत्य बातो से परिचित रहना चाहिए, जीवन में उसको कैसे कार्य करने चाहिए, साथ के लोगो से उसे कैसे सम्बन्ध रखने चाहिए, विपत्ति आने पर उसे कैसे धैर्य रखना चाहिए और ईश्वर की सत्ता को उसे किस प्रकार स्वीकार करना चाहिए। ये सब पक्ष उपनिषद् के नैतिक पक्ष की श्रेणी में आते हैं। मानव को ईश्वर की सत्ता के विषय में यह जानना आवश्यक है कि वह सृष्टि के प्रत्येक कण में उपस्थित है तथा इसको स्वीकार करते हुए व्यक्ति त्यागपूर्वक वस्तुओं का उपभोग करे तथा किसी अन्य के भाग पर अपना अधिकार न करे।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध: कस्य स्विद्धनम्॥[169]

---

169 ईशा. १

इस प्रकार के नैतिक वचन उपनिषदों के अनेक आख्यानों में प्राप्त होते हैं जिनका हम यहाँ पर अध्ययन करेंगे।

३.१ यम – नचिकेता आख्यान (कठोपनिषद्)

कठोपनिषद् के इस चर्चित आख्यान में बालक नचिकेता यमराज से तीसरे वरदान के रूप में मृत्यु के सत्य के विषय में जानना चाहता है परन्तु यमराज नचिकेता को यह सत्य नहीं बताना चाहते। वह नचिकेता को अनेक प्रकार के राजसिक सुख वर में माँगने कि लिए कहते हैं और उनको प्रदान करने का आश्वासन भी देते है लेकिन ब्रह्म की सत्यता से दूर रखना चाहते हैं। बालक नचिकेता भी अपनी बात पर दृढ रहते हुए उसी सत्य को वर के रूप में जानना चाहते हैं। इसी जिज्ञासा को प्रकट करते हुए वह यमराज से कहता है-

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये

अस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।

एतद्विद्यामनुषिष्टस्त्व्याहं

वराणामेष वरस्तृतीय:॥[170]

[170] कठोपनिषद् १/१/२०

अर्थात् मरने के बाद शरीर तो नष्ट हो जाता है पर आत्मा का अस्तित्व रहता है ऐसा कुछ लोग कहते हैं तथा कुछ ऐसा कहते हैं कि मरने के बाद आत्मा का अस्तित्व नहीं रहता। यह जगत् के सभी लोगों में एक संदेह बना हुआ है। इसी यथार्थ को हे यमराज ! आज मैं आप से तीसरे वरदान के रूप में जानना चाहता हूँ।

यमराज भी नचिकेता की इस जिज्ञासा को वरदान रूप में सुनकर चकित हो जाते हैं और उसको अनेक प्रकार के सांसारिक सुख देने का प्रयास करते हुए कहते हैं-

शतायुष: पुत्रपौत्रान् वृणीष्व

बहून् पशून् हस्तिहिरण्यमश्वान्।

भूमेर्महदायतनं वृणीष्व

स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि॥[171]

अर्थात् हे नचिकेता ! तुम मुझसे वर के रूप में सौ वर्ष की आयु तक जीने वाले पुत्रों और पौत्रों को माँग लो जो अनेकों वर्षों तक तुम्हारे वंश को बढ़ाऐंगे तथा तुम्हारे यश को और अधिक फैलाऐंगे। सैकड़ों पशुओ, हाथियों, हिरणों तथा अश्वों को माँग लो जिनकी सहायता से तुम्हारी शक्ति बढेगी और तुम दूर-दूर के स्थानों की यात्राओं को अल्प समय में सम्पन्न कर सकोंगे। तुम चाहों तो भूमि का एक बड़ा हिस्सा मुझसे माँग लो जिस पर तुम अपना साम्राज्य स्थापित करके उसको बढा सकोगे और या फिर स्वयं

[171] कठोपनिषद् १/१/२३

अपनी आयु सौ वर्ष की माँग लो जिससे तुम इस आनन्दमय जगत् के सुखों को दीर्घ समय तक भोग सको।

इसी क्रम में आगे यम नचिकेता से कहते हैं-

एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं

वृणीष्व वित्तं चिरजीविकां च।

महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि

कामानां त्वा कामभाजं करोमि॥[172]

अर्थात् हे नचिकेता ! यदि तुम आत्मज्ञान के समान और किसी वर को मानते हो तो उसको मुझसे माँग लो। तुम बहुत-सा धन मुझसे माँग लो और धन-सम्पत्ति तथा अनेक भोग के साधनों को वर रूप में माँग लो। तुम चाहो तो बहुत सी भूमि माँगकर उसके सम्राट बन सकते हो और मैं तुमको उत्तम से भी उत्तम भोगों को भोगने वाला बना सकता हूँ। आगे भी यमराज कहते हैं-

ये ये कामा: दुर्लभा: मर्त्यलोके

सर्वान् कामाँश्छन्दत: प्रार्थयस्व।

इमा रामा: सरथा सतूर्या

न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यै:।

---

[172] कठोपनिषद् १/१/२४

आभिर्मत्प्रत्ताभि: परिचारयस्व

नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षी॥[173]

नचिकेता! जो-जो भोग मृत्युलोक में दुर्लभ हैं, उन सबको तुम अपने इच्छानुसार माँग लो। ये रथों और विविध प्रकार के वाद्योंसहित जो स्वर्ग की सुन्दरी रमणियाँ हैं, ऐसी रमणियाँ मनुष्यो में कही नहीं मिल सकती। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि इनके लिए ललचाते रहते हैं। मैं इन सबको तुम्हें सहज ही दे रहा हूँ। तुम इन्हें ले जाओ और इनसे अपनी सेवा कराओ; परन्तु नचिकेता! आत्मततत्त्व विषयक प्रश्न मत पूछों।

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्

सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेज:।

अपि सर्वं जीवितमल्पमेव

तवैव वाहास्तव नृत्यगीते॥[174]

हे सबका अन्त करने वाले यमराज! आपने जिन भोग्य वस्तुओं की महिमा के पुल बाँधे हैं, वे सभी क्षणभंगुर हैं। कल तक रहेंगी या नहीं, इसमें भी संदेह हैं। इनके संयोग से प्राप्त होने वाला सुख वास्तव में सुख ही नहीं हैं, वह तो दुख ही है। ये भोग्य वस्तुएँ

---

[173] कठोपनिषद्. १/१/२५

[174] कठोपनिषद् १/२६

कोई लाभ तो देती ही नहीं, वरन मनुष्य की इन्द्रियों के तेज और धर्म को हरण कर लेती है। आपने जो दीर्घ जीवन देना चाहा है, वह भी अनन्त काल की तुलना में अल्प ही है। जब ब्रह्म आदि देवताओ का जीवन भी अल्प काल का हैं – एक दिन उन्हें भी मरना पडता हैं तब औरों की तो बात ही क्या हैं। अतएव यह सब मैं नहीं जानता। ये सब हाथी घोडे रथ और रमणियाँ और इनके नाच गान आप अपने पास ही रखे।

गीता में भी इसी प्रसंग में कहा गया है-

ये हि संस्पर्शजा भोगा दु:खयोनय एव ते।

आद्यन्तवन्त: कौन्तेय न तेषु रसते बुध:॥[175]

अर्थात् इन्द्रिय और विषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाले सभी भोग यद्यपि कुछ समय के लिए सुख देते है तो भी वे दु:ख को ही देने वाले हैं। और ये अन्तकाल वाले और अनित्य है। इसीलिए हे अर्जुन! बुद्धिमान् विवेकी पुरुष उन में नहीं रमता।

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो

लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चे त्वा।

---

[175] गीता ५.२२

जीविष्यामो यावदीष्यसि त्वं

वरस्तु मे वरणीय: स एव॥[176]

अर्थात् धन से मनुष्य तृप्त नहीं हो सकता। आग में घी डालने से जैसे आग जोर से भडकती हैं उसी प्रकार धन और भोगों की प्राप्ति से भोग कामना का और भी विस्तार होता हैं वहाँ तृप्ति कैसी वहाँ तो दिन रात अपूर्णता और अभाव की अग्नि में जलना पडता हैं। ऐसे दु:खमय धन और भोगों को कोई बुद्धिमान पुरुष नहीं माँग सकता। मुझे अपने जीवन निर्वाह के लिए जितने धन की आवयश्कता होगी उतना तो आप के दर्शन से प्राप्त हो जायेगा। रही दीर्घ जीवन की बात सो जब तक मृत्यु के पद पर आपका शासन हैं तब तक मुझे मरने का भी भय नहीं हैं अत: किसी भी दृष्टि से दूसरा वर माँगना उचित नहीं मालूम होता। इसलिए मेरे द्वारा प्रार्थनीय तो वह आत्मविषयक वर ही हैं।

अजीर्यताममृतानामुपेत्य

जीर्यन् मर्त्य: क्वध:स्थ: प्रजानन्।

[176] कठोपनिषद् १/१/२७

अभिध्यायन् वर्णरतिप्रमोदा-

नतिदीर्घे जीविते को रमेत॥[177]

हे यमराज! आप ही बताइये भला आप जैसे महात्मा देवताओं का दुर्लभ संग प्राप्त करके मृत्युलोक का ऐसा कौन सा बुद्धिमान पुरुष होगा जो स्त्रियो के सौन्दर्य क्रीडा और आमोद-प्रमोद में आसक्त होकर उनकी और दृष्टिपात करेगा और दीर्घकाल तक जीवित रहने में आनन्द मानेगा?

यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो

यत्साम्पराये महति ब्रूहि नस्तत्।

योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो

नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते॥[178]

नचिकेता कहता हैं कि हे यमराज! जिस आत्मतत्व सम्बन्धी महान ज्ञान के विषय में लोग यह शंका करते हैं कि मरने के बाद आत्मा का अस्तित्व रहता हैं या नहीं उसके सम्बन्ध में जो आपका निर्णयात्मक अनुभूत ज्ञान हो उसका मुझे उपदेश कीजिए। इसके अतिरिक्त नचिकेता आप से दूसरा कोई वर नहीं चाहता।

---

[177] कठोपनिषद् १/१/२८

[178] कठोपनिषद् १/१/२९

यहाँ पर नचिकेता प्रेय मार्ग को छोडकर श्रेय मार्ग का अनुसरण करता है। वह भौतिक सुखों को दीर्घकालिक न मानकर अल्पकालिक मानता है तथा आत्मज्ञान को ही दीर्घकालिक मानकर उसी को प्राप्त करने की चेष्टा करते हुए उसे यम से प्राप्त करने की इच्छा करता है। यद्यपि यमराज ने उसको अनेक प्रकार के भौतिक सुख-सुविधाऐं प्रदान करने का आश्वासन दिया पर फिर भी नचिकेता अपने प्रण पर अटल रहा।

नचिकेता क्रोध से भरे हुए अपने पिता के पास जाकर बोला कि हमें अपने पूर्वजों के श्रेष्ठ कर्मों का अनुकरण करना चाहिए तथा वर्तमान में भी जो लोग अपने जीवन में अच्छे कर्म कर रहे हैं उनके आदर्श पदचिह्नों पर भी चलना चाहिए। इन दोनों के द्वारा किए जाने वाले कर्मों का आकलन करके अपने द्वारा करने योग्य कर्मों का निश्चय करना चाहिए क्योंकि इससे हमें एक सही व उचित दिशा का पता चल जाता है। मानव के जीवन की स्थिति ठीक एक वृक्ष के बीज जैसी है जो कि समय पर नष्ट होकर वृक्ष के रूप में परिणत हो जाता है और पुन: बीज के रूप में उत्पन्न हो जाता है। यथा-

अनुपश्य यथा पूर्वे प्रतिपश्य तथापरे।

सस्यमिव मर्त्य: सस्यमिवाजायते पुन:॥[179]

[179]कठोपनिषद् १/६

यदि मनुष्य जीवन में वास्तविक उन्नति करना चाहता है तो उसे सबसे पहले अपने अहम् से ऊपर उठना आवश्यक है। जब व्यक्ति 'मैं' को छोड़ देता है तो वह अन्य सभी में स्वयं को देखने लगता है। इसीलिए विद्वानों का मानना है कि जीना चाहते हो तो पहले मरना सीखो। जैसे बीज जब मरता है तो वह पेड़ बन जाता है। इसी प्रकार उपनिषद् के कथनानुसार हमें पहले अपने आप को मारना होगा अर्थात् अहम् को नष्ट करना होगा। तभी हम वास्तविक रूप से जी सकते हैं।

३.२ पैप्पलाद-कबन्धी आख्यान (प्रश्नोपनिषद्)

प्रश्नोपनिषद् मे ऋषि पैप्पलाद अपने शिष्य कबन्धी को बताते हैं कि

तद्ये ह वै तत्प्रजापतिव्रतं चरन्ति ते मिथुनमुत्पादयन्ते। तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम्॥[180]

जो लोग निश्चयपूर्वक प्रजापति के व्रत का अनुष्ठान करते हैं अथवा स्वर्ग आदि लोकों की प्राप्ति के लिए शास्त्रविहित कर्मों का अनुकरण करते हुए मैथुन करते हैं वे पुत्र और पुत्री के रूप में जोड़े को प्राप्त करते है। जो उनसे भिन्न सत्य में प्रतिष्ठित होकर ब्रह्म को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं वे ही ब्रह्म को समय आने पर प्राप्त करते हैं।

आगे इस बात को और भी पुष्ट करते हुए ऋषि बताते हैं-

---

[180] प्रश्नोपनिषद् १.१५

तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्मनृतं न माया चेति॥[181]

जिनमें कुटिलता, माया, छल, प्रपञ्च तथा झूठ आदि स्थित नहीं हैं वहीं लोग विकारशून्य होकर ब्रह्मलोक की प्राप्ति के अधिकारी होते हैं।

ब्रह्मलोक की प्राप्ति हेतु यह आवश्यक है कि व्यक्ति अनेक प्रकार के छल व प्रपञ्चों से दूर रहे। ये सभी व्यक्ति को उसके परम पद की प्राप्ति के मार्ग में बाधा उत्पन्न करते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और अहंकार इत्यादि मानव के ये छ: शत्रु उसके कल्याण-मार्ग में बाधा उत्पन्न करके उसको उसके जीवन के अभीष्ट से रोकते हैं तथा यह प्रयास करते हैं कि वह इसी जीवन-मरण के चक्र में फंसा रहे।

३.३ मुण्डकोपनिषद्

उपनिषदों में दो प्रमुख विद्याओं का वर्णन है। इनमें एक परा विद्या है तथा दूसरी अपरा विद्या है।[182] मानव को अपने भौतिक जीवन में इन दोनों को जानने का यत्न करना चाहिए। मुण्डकोपनिषद् में शौनक के पूछने पर महर्षि अङ्गिरा उसको इन दोनों विद्याओं का उपदेश करते हुए कहते हैं-

---

[181] प्रश्नोपनिषद् १.१६

[182] द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च। मुण्डकोपनिषद्१.४

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेद: सामवेदोऽथर्ववेद: शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषामिति।[183]

अर्थात् पहली अपरा विद्या है जिसके अन्तर्गत वेद व शास्त्र आदि आते हैं। जैसे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद तथा वेदांग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द व ज्योतिष)।

इसके पश्चात् ऋषि परा विद्या के विषय में बताते हैं-

अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।[184]

अर्थात् जिसके द्वारा उस अक्षर ब्रह्म को जाना जाता है वह परा विद्या है।

परा विद्या वेद-शास्त्रों आदि से पृथक् होकर अनुभव का विषय है। इसी कारण यह वेद व शास्त्र आदि से ऊपर है।

मानव के लिए अपरा व परा दोनों ही विद्याओं को जानना आवश्यक है। वेदादि शास्त्रों के अध्ययन से एक ओर वह लौकिक ज्ञान को प्राप्त करता है, वहीं अपरा विद्या की सहायता से वह पारलौकिक ज्ञान को अनुभव करने में सक्षम होता है।

---

[183] मुण्डकोपनिषद् १.५

[184] मुण्डकोपनिषद् १/५

जो लोग सकाम कर्मों को अन्तिम कल्याण का मार्ग मान लेते हैं उनके विषय में उपनिषद् कहता है कि-

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा

अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म।

एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा

जरामृत्यु ते पुनरापि यन्ति॥[185]

अर्थात् यज्ञरूप अठारह नौकाऐं अस्थिर हैं जिनमें उपासनारहित सकाम कर्म बताया गया है। जो मूर्ख इसी को कल्याण का मार्ग समझकर इसकी प्रशंसा करते हैं वे नि:सन्देह बारम्बार वृद्धावस्था एवं मृत्यु को प्राप्त होते रहते हैं।

अविद्यायामन्तरे वर्तमाना: स्वयंधीरा: पण्डितं मन्यमाना:।

जङ्घन्यमाना: परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धा:॥[186]

जो लोग सकाम कर्मों में ही लगे रहकर निरन्तर उन्हीं को करने में लगे रहते हैं, ऐसे लोग इन कर्मों को करके स्वयं को पण्डित मानने लगते हैं और मिथ्या अहंकार में जीते हैं। वे इसी प्रकार की अनेक योनियों में जन्म लेकर जन्म-मरण के बन्धन में पड़े रहते हैं। ऐसे लोग कभी भी शान्ति व मुक्ति को प्राप्त नहीं कर पाते व उनकी स्थिति ठीक

---

[185] मुण्डकोपनिषद् १.७

[186] मुण्डकोपनिषद् १.२.८

वैसे ही होती है जैसे अन्धे लोगों के समूह को ले जाने वाला उनका मुखिया भी अन्धा ही होता है। ऐसे समूह के सभी लोग कभी किसी निश्चित गन्तव्य तक नहीं पहुंच पाते और इधर से उधर बीच में ही भटकते रहते हैं।

अविद्यायां बहुधा वर्तमाना

वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बाला।

यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्

तेनातुरा: क्षीणलोकाश्च्यवन्ते॥[187]

सकाम कर्मों को अनेक प्रकार से करने वाले लोग अविद्या के शिकंजे में ऐसे फंसे रहते हैं कि इसका उनको स्वयं भी पता नहीं चलता। बल्कि इनको करने के पश्चात् वे यह मानने लगते हैं कि हमने इस जीवन में करने योग्य प्रमुख कर्मों को कर लिया है और इस प्रकार वे स्वयं को कृतार्थ मानने लगते हैं। वे लोग सांसारिक विषयों में आसक्ति के कारण वास्तविक कल्याण की ओर नहीं देख पाते। ऐसी स्थिति में वे पुण्य से उपार्जित स्वर्गादि लोकों विरक्त होकर निम्न लोकों में गिर जाते हैं।

इष्टापूर्त्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढा:।

---

[187] मुण्डकोपनिषद् १.२.९

नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति॥[188]

इष्ट तथा पूर्त्त आदि वेद व स्मृति विहित कर्मों को ही श्रेष्ठ मानने वाले उससे भिन्न वास्तविक ज्ञान व कर्म को नहीं समझ पाते। वे लोग निष्काम कर्म की ओर कभी भी ध्यान न देकर परमात्मा को जानने का कभी भी यत्न नहीं करते। वे मात्र अपने द्वारा किए गए सकाम कर्मों को करने के उपरान्त प्राप्त हुए सुखों को भोगकर पुन: इसी मर्त्यलोक में आकर अनेक प्रकार की निम्न योनियों को प्राप्त करते हैं तथा इन्हीं के बन्धन में पड़े रहते हैं।

जो व्यक्ति सकाम कर्मों को छोड़कर उस अव्यय परमात्मा की ओर गति करता है उसके विषय में आगे ऋषि कहते हैं-

तप: श्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये

शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्यां चरन्त:।

सूर्यद्वारेण ते विरजा: प्रयान्ति

यत्रामृत: स पुरुषो ह्यव्ययात्मा॥[189]

---

[188] मुण्डकोपनिषद् १.२.१०

[189] मुण्डकोपनिषद् १.२.११

जो तप व श्रद्धा का सेवन करने वाले अर्थात् वह चाहे किसी भी आश्रम में रहने वाले हों। चाहे वह अध्ययन करने वाले तथा ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले ब्रह्मचारी हों, सयंम के साथ गृहस्थ आश्रम में रहते हुए अपने कर्तव्यों का निर्वाह कर रहे हों, या वे पारिवारिक दायित्वों को पूर्ण कर चुके वानप्रस्थी हों। वे लोग शम[190]-दम[191] आदि साधनों के द्वारा सम्पन्न होकर, शान्त स्वभाव वाले होकर भिक्षाचरण करते हुए वन में एकान्त वातावरण में निवास करते हैं, वे रजोगुण से रहित होकर सूर्य के मार्ग से वहाँ पर पहुंचते हैं जहाँ पर नित्य तथा अविनाशी परमपुरुष निवास करता है।

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो

निर्वेदमायान्नास्त्यकृत: कृतेन

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्

समित्पाणि: श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥[192]

ऐसे लोग यह जान जाते हैं कि वह अविनाशी, नित्य परम पुरुष किए जाने वाले कर्मों से प्राप्य नहीं है क्योंकि वह तो स्वयंसिद्ध परमेश्वर है उसे किसी के द्वारा किए

---

[190] शमस्तावत् श्रवणादिव्यतिरिक्तविषयेभ्यो मनसो निग्रह:। - वेदान्तसार

[191] दम: वाह्येन्द्रियाणां तद्व्यतिरिक्तविषयेभ्यो निवर्तनम्। - वेदान्तसार

[192] मुण्डकोपनिषद् १.२.१२

जाने वाले कर्म की अपेक्षा बिल्कुल भी नहीं है। किए जाने वाले इन सांसारिक कार्यों से मनुष्य क्षणिक, सांसारिक भोगों व सुखों को तो भोग सकता है परन्तु परम सुख को वह इनसे प्राप्त नहीं कर सकता। आगे भी ऋषि बताते हैं कि उस परमात्मा को जानने के लिए व्यक्ति को एक योग्य व तपस्वी गुरु की आवश्यकता होती है। वही गुरु उसको सकाम व निष्काम कर्म आदि के विषय में शिक्षा देता हुआ उस परमात्मा की प्राप्ति के साधन को बताता है। ऐसे गुरु के पास शिष्य हाथ में समिधा लेकर[193] (समित्पाणि) वेद के ज्ञाता और श्रोत्रिय गुरु के पास जाता है।

अपनी शरण में आए हुए उस जिज्ञासु शिष्य का वह गुरु क्या करे, इस विषय में भी ऋषि कहते हैं-

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्

प्रशान्तचित्ताय शमन्विताय।

येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं

प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्॥[194]

---

[193] समित्पाणि: समिद्भारगृहीतहस्त: श्रोत्रियमध्ययनश्रुतार्थसम्पन्नं ब्रह्मनिष्ठं हित्वा सर्वकर्माणि केवलेऽद्वये ब्रह्मणि निष्ठा यस्य सोऽयं ब्रह्मनिष्ठो जपनिष्ठस्तपोनिष्ठ इति यद्वत्। मुण्डकोपनिषद् शांकरभाष्य १.२.१२

[194] मुण्डकोपनिषद् १.२.१३

जिस शिष्य ने शम व दम आदि साधनों से युक्त होकर अपने मन व इन्द्रियों को वश में कर लिया है, जो सकाम व निष्काम कर्मों को भली-भाँति समझ चुका है। जिसने उस अविनाशी ब्रह्म को जानना ही अपने जीवन का अन्तिम लक्ष्य मान लिया है, ऐसे ब्रह्मजिज्ञासु शिष्य को बह गुरु यथोचित् उपदेश करे जिससे वह उस नित्य परमात्मा के यथार्थ स्वरूप को जान सके।

यस्मिन् द्यौ: पृथिवी चान्तरिक्ष-

मोतं मन: सह प्राणैश्च सर्वै:।

तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या

वाचो विमुञ्चथामृतस्यैष सेतु:॥[195]

ऋषि कहते हैं कि जिस एक परमात्मा में द्युलोक, पृथिवीलोक तथा अन्तरिक्षलोक आदि सभी प्रकार के प्राणों के साथ स्थित है, जो इन सभी का एकमात्र आधार है तथा जिसने इन सभी को एक साथ धारण किया हुआ है जिसके कारण ये सब अपने अस्तित्व में बने हुए हैं उस एक परमात्मशक्ति को ही तुम जानने का यत्न करो और इसको अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित करो। संसार में अनेक प्रकार की जो चर्चाऐं-परिचर्चाऐं चल रही हैं उन सब की ओर ध्यान न देकर तुम उस एक अव्यय में अपने मन को एकाग्र करो क्योंकि वही एक अमृत का सेतु है जिससे तुम्हारा कल्याण निश्चित है।

---

[195] मुण्डकोपनिषद् २.२.५

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा

सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।

अन्त: शरीरे ज्योतिर्गम्यो हि शुभ्रो

यं पश्यन्ति यतय: क्षीणदोष:॥[196]

यह आत्मा परमज्ञान से ही प्राप्त होने योग्य है, वह परमज्ञान उस लौकिकज्ञान से भिन्न है जो कि लोकव्यवहार के लिए आवश्यक है। यह उससे ऊपर की अवस्था है। ब्रह्मचर्य भी इसको प्राप्त करने का एक अनिवार्य साधन है। जो लोग संयमपूर्वक अपना जीवन नहीं बिता पाते और वीर्य की रक्षा नहीं कर पाते वे इस स्थिति को प्राप्त नहीं कर सकते। क्योंकि ये सब साधन अन्त:करण को शुद्ध करने के बताए गए हैं। मलिनताओं से रहित और शुद्ध अन्त:करण में ही वह परमात्मशक्ति निवास करती है। जिसको सभी प्रकार के दोषों से क्षीण हुए लोग ही अनुभव कर पाते हैं।

सत्यमेव जयति नानृतं

सत्येन पन्था विततो देवयान:।

येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा

यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम्॥[197]

---

[196] मुण्डकोपनिषद् ३.१.५

[197] मुण्डकोपनिषद् ३.१.६

आगे ऋषि सत्य व असत्य के महत्व व वास्तविकता के विषय में बताते हैं कि सत्य की ही सदैव विजय होती है, असत्य की नहीं। सत्य भले ही विलम्ब से सामने आए परन्तु वह सामने आता अवश्य है। इसीलिए कहा जाता है कि सत्य परेशान तो हो सकता है परन्तु पराजित नहीं। दुष्ट लोग कुछ समय के लिए असत्य के बल पर सत्यवादी को परेशान कर सकते हैं तथा अपने षड़यन्त्रों का शिकार बना सकते हैं परन्तु अन्त में विजय सत्य की ही होती है। देवताओं का मार्ग सत्य से ही युक्त होता है जिस पर आप्तकाम ऋषिलोग चलकर उस दिव्य परम पुरुष को प्राप्त करते हैं जो कि सत्य का परम निधान है।

कामान् य: कामयते मन्यमान:

स कामभिर्जायते तत्र तत्र।

पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्त्विहैव

सर्वे प्रविलीयन्ति कामा:।।[198]

यहाँ पर ऋषि कामनाओं व विषयों में आसक्त रहने वाले लोगों की बात करते हुए कहते हैं कि जो लोग अपना ध्यान सदैव विषयों व कामनाओं की ओर ही रखते हैं वे नित-प्रतिदिन इसी चेष्टा में लगे रहते हैं कि कहीं से भी उनको मान, आदर व प्रतिष्ठा आदि प्राप्त हो जाए इसके लिए वह निरन्तर यहाँ से वहाँ विचरण करते रहते हैं तथा

---

[198] मुण्डकोपनिषद् ३.२.२

अपना अधिकांश समय इसी में देते हैं ऐसे लोग जिस भी स्थान पर जाते हैं वे वहाँ पर अपनी कामनाओं की सन्तुष्टि की ही चेष्टा करते हैं। परन्तु इसके विपरीत जो पूर्णकाम मनुष्य होते हैं वे विशुद्ध अन्त:करण वाले होने से अपने मन व इन्द्रियों की सम्पूर्ण कामनाओं को वश में कर लेते हैं और ऐसे लोगों की समस्त कामनाऐं व इच्छाऐं अपने आप ही नष्ट हो जाती हैं।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्य:

न मेधया न बहुश्रुतेन

यमेवैष वृणुते तेन लभ्य:

स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनु स्वाम्॥[199]

आत्मा की प्राप्ति के साधनों के विषय में चर्चा करते हुए यहाँ पर ऋषि कहते हैं कि यह आत्मा महात्माओं के द्वारा दिए गए प्रवचन, न बुद्धि से और न ही अनेक प्रकार के वेदों व शास्त्रों आदि के ज्ञान से सरलता से प्राप्त करने योग्य नहीं हैं यह तो शुद्धरूप से अनुभव का विषय है जो कि वेद-शास्त्रों के अध्ययन, तथा प्रवचन आदि से ऊपर है। यह आत्मा अपने को प्रकाशित करने के लिए स्वयं जिस मनुष्य का वरण करती है, उसको

[199] मुण्डकोपनिषद् ३.२.३

अनेक प्रकार से परीक्षित करने के पश्चात् यह उसके लिए स्वयं को उपस्थित कर देती है। वही अधिकारित्व से परिपूर्ण मनुष्य इस आत्मा को यथार्थ रूप में जान पाता है।

नायमात्मा बलहीनेन लभ्य:

न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिङ्गात्।

एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वा-

स्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम॥[200]

आगे ऋषि बलहीन मनुष्य को भी ब्रह्मप्राप्ति में असमर्थ मानते हुए कहते हैं कि बलहीन मनुष्य भी परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता। यहाँ पर बलहीन से तात्पर्य शारीरिक रूप से कमजोर होने के साथ-साथ मानसिक व आत्मिक रूप से भी लिया जाना चाहिए। जब तक शरीर स्वस्थ[201] नहीं होगा, किसी न किसी बीमारी ने शरीर को जकड़ा हुआ होगा तो अन्त:करण भी स्वस्थ नहीं हो पाएगा, जिससे मनुष्य का मन किसी भी एक स्थान पर एकाग्र नहीं हो पाएगा और ऐसा व्यक्ति परमात्मा के दर्शन करने में समर्थ नहीं हो सकता। प्रमाद (आलस्य) भी मनुष्य का महान् शत्रु है। यह भी उसको अपने लक्ष्य की प्राप्ति से दूर करता है। इसी प्रकार ठीक प्रकार से न किया गया तप भी मनुष्य को परमात्मप्राप्ति से रोकता है। जो मनुष्य इन सब विकारों को दूर करके

---

[200] मुण्डकोपनिषद् ३.२.४

[201] स्वस्मिन् तिष्ठति इति स्वस्थ:।

यत्नपूर्वक मन व इन्द्रियों को एक ही दिशा में लगाकर प्रयास करता है, उसी व्यक्ति को यह आत्मा ब्रह्मधाम के दर्शन कराती है।

सम्प्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ता:

कृतात्मानो वीतरागा: प्रशान्ता:।

ते सर्वगं सर्वत: प्राप्य धीरा

युक्तात्मान: सर्वमेवाविशन्ति॥[202]

परमात्मा के ज्ञान को प्राप्त कर चुके लोगों के विषय में ऋषि यहाँ पर कहते हैं कि जो साधनचतुष्टयसम्पन्न[203] लोग इस तत्वज्ञान को प्राप्त करके परमशान्ति को प्राप्त कर लेते हैं और सासांरिक मोहमाया से मुक्त होकर वीतराग[204] को प्राप्त कर लेते हैं। वे लोग स्वयं को भी परामात्मा में संयुक्त करने के साथ-साथ सब ओर से परमात्मा में ही प्रविष्ट हो जाते हैं।

क्रियावन्त: श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठा

स्वयं जुह्वत एकर्षिं श्रद्धयन्त:।

तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत

---

[202] मुण्डकोपनिषद् ३.२.५

[203] साधनानि- नित्यानित्यवस्तुविवेकेहामुत्रार्थफलभोगविरागशमादिषट्कसम्पत्तिमुमुक्षुत्वानि। - वेदान्तसार

[204] वीतरागा: वीतरागादिदोषा: प्रशान्ता: उपरतेन्द्रिया:। - मुण्डकोपनिषद् शां भा. ३.२.५

शिरोव्रतं विधिवद्यैस्तु चीर्णम्॥[205]

यहाँ पर अङ्गिरा ऋषि ब्रह्मविद्या के अधिकारी का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जो सभी साधनों से युक्त सर्वश्रेष्ठ क्रियाओं को करने वाले वेदादि शास्त्रों का भली-भाँति अध्ययन करने वाले ब्रह्मभाव में प्रतिष्ठित होने की कामना करने वाले 'एकर्षि' नामक अग्नि में नियमानुसार अग्निहोत्र करने वाले होते हैं तथा जिन लोगों ने अपने जीवनकाल में सर्वश्रेष्ठ व्रत का पालन किया है, जो सत्य, समर्पण आदि गुणों से युक्त हैं ऐसे ही अधिकारियों को ब्रह्मविद्या का उपदेश करना चाहिए।

इस उपनिषद् के अन्त में शान्तिपाठ में साधक के द्वारा परमात्मशक्ति से अपने शरीर के कल्याण की कामना की जाती है-

भद्रं कर्णेभि: शृणुयाम देवा: भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्रा:।

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायु:॥[206]

हम अपने कानों से सदैव कल्याणकारी वा सार्थक बातों को सुनें। अपने नेत्रों से भी कल्याणकारी दृश्य व सत्य को देखने की चेष्टा करें। हमारी आँखे हमें भौतिक संसार की विभिन्न वस्तुऐं दिखाने के साथ-साथ भीतर की सत्यता को अनुभव कराने में भी

---

[205] मुण्डकोपनिषद् ३.२.१०

[206] शान्तिपाठ (मुण्डकोपनिषद्)

समर्थ हों। हमारे शरीर के सभी अंग स्वस्थ हों व दीर्घायु हों। अनेक वर्षों तक हम इन स्वस्थ अंगों से उस ईश्वर को जानने व उसकी उपासना करने में तत्पर रहें।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा: स्वस्ति न: पूषा विश्ववेदा:।

स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमि: स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥[207]

अर्थात् हमारे लिए इन्द्र कल्याणकारी हो, वृद्धश्रवा भी कल्याण को देने वाले हों, पूषा देवता[208] जो कि सभी लोगों का पोषण करने वाले हैं वे भी हमारे लिए लाभदायक हों। हमारा तारामण्डल हमारे लिए कल्याणकारी हो तथा बृहस्पति जो कि सौर मण्डल में सबसे बड़ा ग्रह है, हमारे लिए कल्याण को प्रदान करने वाला हो।

तैत्तिरीयोपनिषद् में वरुण ऋषि अपने पुत्र भृगु को अन्न की महिमा का उपदेश करते हुए कहते हैं कि-

अन्नं बहु कुर्वीत। तद् व्रतम्। पृथिवी वा अन्नम्। आकाशोऽन्नाद:। पृथिव्यामाकाश: प्रतिष्ठित:। आकाशे पृथिवी प्रतिष्ठिता। तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम्। स य एतदन्नमन्ने

---

[207] शान्तिपाठ (मुण्डकोपनिषद्)

[208] जनान् पोषयतीति पूषा।

प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति। अन्नवानन्नादो भवति। महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन। महान् कीर्त्या।[209]

अन्न को बढ़ाने का व्रत मनुष्य को लेना चाहिए। पृथिवी ही अन्न है और आकाश पृथिवी रूप अन्न का आधार होने से अन्नाद है। पृथिवी में आकाश प्रतिष्ठित है और आकाश में पृथिवी प्रतिष्ठित है। अन्न में अन्न भी प्रतिष्ठित है। जो मनुष्य इस रहस्य को भली-भाँति जान जाता है वह अन्नवान् होकर अन्न को यथेष्ट खाने वाला और उसको भली प्रकार पचाने वाला हो जाता है। वह पशुधन, ब्रह्मतेज, यश व कीर्ति से भी युक्त होकर महान् बन जाता है।

न कंचन वसतो प्रत्याचक्षीत। तद् व्रतम्। तस्माद्यया च विधया बह्वन्नं प्राप्नुयात्। आराध्यस्मा अन्नमित्याचक्षते। एतद्वै मुखतोऽन्नँराद्धम्। मुखतोऽस्मा अन्नँ राध्यते। एतद्वै मध्यतोऽन्नँराद्धम्। मध्यतोऽस्मा अन्नँ राध्यते। एतद्वा अन्ततोऽन्नँराद्धम्। अन्ततोऽस्मा अन्नँ राध्यते। य एवं वेद।[210]

ऋषि कहते हैं कि गृहस्थ लोगों को अपने घर पर आए हुए अतिथि को देवता मानते हुए उसका यथोचित आदर व सत्कार करना चाहिए। यदि कोई अतिथि घर पर

---

[209] तैत्तिरीयोपनिषद् ३.९.१

[210] तैत्तिरीयोपनिषद् ३.१०.१

बिना किसी सूचना के अचानक भी आ जाए तो उसको कोई प्रतिकूल उत्तर नहीं देना चाहिए क्योंकि अतिथि का अर्थ ही यह बताता है कि-

"यस्य गमनतिथि: न विद्यते स: अतिथि:"[211]

अर्थात् जिसके आने की कोई निश्चित् तिथि नहीं रहती वह अतिथि होता है।

उसको भली प्रकार अपने घर में ठहराना चाहिए और समय पर भोजन इत्यादि कराना चाहिए। उपनिषद् कहता है कि जो कोई अतिथि को अधिक आदर श्रद्धा व प्रेम से भोजन कराता है तो उसको अधिक प्रसन्नता व समृद्धि प्राप्त होती है, जो कोई उसको मध्यम आदर श्रद्धा व प्रेम से भोजन कराता है तो उसको मध्यम श्रेणी की प्रसन्नता व समृद्धि प्राप्त होती है और जो कोई अतिथि को न्यून आदर श्रद्धा व प्रेम से भोजन कराता है तो उसको न्यून ही प्रसन्नता व समृद्धि प्राप्त होती है।

आगे ऋषि मानव शरीर में अलग-अलग रूप में उस परमात्मा की उपस्थिति के विषय में बता रहे हैं-

क्षेम इति वाचि। योगक्षेम इति प्राणापानयो:। कर्मेति हस्तयो:। गतिरिति पादयो:। विमुक्तिरिति पायौ। इति मानुषी: समाज्ञा:। अथ दैवी:। तृप्तिरिति वृष्टौ। बलमिति

---

[211] चाटुचणक:

विद्युति। यश इति पशुषु। ज्योतिरिति नक्षत्रेषु। प्रजातिरमृतमानन्द इत्युपस्थे। सर्वमित्याकाशे।[212]

वह एक शक्ति वाणी में रक्षा के रूप में उपस्थित है। प्राण और अपान वायु में प्राप्ति और रक्षा दोनों शक्तियों के रूप में है। पैरों मे वह गति के रूप में है। गुदा में मलत्याग की शक्ति के रूप मे है। ये सभी मानुषी उपासनाएँ हैं। आगे दैवी उपासनाओं के विषय में कहते हैं कि वर्षा में तृप्ति शक्ति के रूप में है, बिजली में विद्युत शक्ति के रूप में है, पशु में यश बनकर रहती है, ग्रहों ओर नक्षत्रों में ज्योति रूप में स्थित है, उपस्थ में प्रजा उत्पन्न करने की शक्ति अर्थात् वीर्य और आनन्द के रूप में है और वही आकाश में सबका आधार बनकर रहती है।

३.४ नारद –सनत्कुमार आख्यान (छान्दोग्योपनिषद्)

छान्दोग्योपनिषद् में सनत्कुमार, नारद को कहते हैं कि-

एष तु वा अतिवदति य: सत्येनातिवदति सोऽहं भगव: सत्येनातिवदति सत्यं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति सत्यं भगवो विजिज्ञास इति।[213]

---

[212] तैत्तिरीयोपनिषद् ३.१०.२

[213] छान्दोग्योपनिषद् ७.१६

जो सत्य के कारण अतिवदन करता है वही वास्तव में अतिवदन करता है। मैं तो विज्ञान के कारण आपके सामने अतिवदन कर रहा हूँ। इसीलिए हे सनत्कुमार! मैं सत्य की ही जिज्ञासा करता हूँ और मुझे सत्य की ही जिज्ञासा करनी चाहिए।

यदा वै विजानात्यथ सत्यं वदति नाविजानन्सत्यं वदति विजानन्नेव सत्यं वदति विज्ञानं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति सत्यं भगवो विजिज्ञास इति।[214]

जब भी पुरुष सत्य को बोलता है तो वह उससे पहले ही सत्य का भली प्रकार विचार कर लेता है। यह विचार करने की सामर्थ्य ही उसको क्या बोलना है? इस बात के लिए तैयार करती है। अत: विज्ञान की ही जिज्ञासा करनी चाहिए।

यदा वै मनुतेऽथ विजानाति नामत्वा विजानाति मत्वैव विजानाति मतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति मतिं भगवो विजिज्ञास इति।[215]

आगे सनत्कुमार कहते हैं कि जिस समय मानव मनन करता है तो ही वह किसी भी बात अथवा तथ्य को विशेष रूप से जान पाता है और यह कार्य मति का है जो कि उसको इस कार्य के लिए समर्थ बनाती है। अत: मति की ही जिज्ञासा करनी चाहिए।

---

[214] छान्दोग्योपनिषद् ७.१७

[215] छान्दोग्योपनिषद् ७.१८

यदा वै श्रद्दधात्यथ मनुते नाश्रद्दधन्मनुते श्रद्दधदेव मनुते श्रद्धा त्वेव विजिज्ञासितव्येति श्रद्धां भगवो विजिज्ञास इति।[216]

जब भी मनुष्य किसी भी बात का मनन करता है तो वह श्रद्धा के बिना नहीं करता क्योंकि श्रद्धा ही है जो उसे इसकी प्रेरणा देती है कि उसे किस बात का मनन करना चाहिए। श्रद्धा की भी जिज्ञासा करनी चाहिए।

यदा वै निस्तिष्ठत्यथ श्रद्दधाति नानिस्तिष्ठञ्छ्रद्दधाति निस्तिष्ठन्नेव श्रद्दधाति निष्ठा त्वेव विजिज्ञासितव्येति निष्ठां भगवो विजिज्ञास इति।[217]

निष्ठा से पूर्व भी श्रद्धा का स्थान है। जिस समय पुरुष की निष्ठा होती है, तभी वह श्रद्धा करने में समर्थ होता है। बिना श्रद्धा के कोई भी निष्ठा नहीं कर सकता। अत: मानव को श्रद्धा को ही विशेष रूप से जानने की इच्छा करनी चाहिए।

यदा वै करोत्यथ निस्तिष्ठति नाकृत्वा निस्तिष्ठति कृत्वैव निस्तिष्ठति कृतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति। कृतिं भगवो विजिज्ञास इति।[218]

---

[216] छान्दोग्योपनिषद् ७.१९

[217] छान्दोग्योपनिषद् ७.२०

[218] छान्दोग्योपनिषद् ७.२१

यहाँ करने की इच्छा के महत्त्व को ऋषि बताते हैं जिसको उपनिषद् में कृति कहा गया है। वे कहते हैं कि कृति अर्थात् करने की इच्छा के बिना श्रद्धा भी नहीं हो पाती अत: कृति की भी जिज्ञासा करनी चाहिए।

यदा वै सुखं लभतेऽथ करोति नासुखं लब्ध्वा करोति सुखमेव लब्ध्वा करोति सुखं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति। सुखं भगवो विजिज्ञास इति।[219]

यहाँ पर ऋषि कहते हैं कि जब मनुष्य सुखी होता है, तभी वह कुछ भी करने की इच्छा कर पाता है। बिना सुख के वह कुछ भी नहीं कर सकता। अत: सुख की भी कामना करनी चाहिए। नारद कहते हैं कि हे भगवन्! मैं सुख की जिज्ञासा करता हूँ।

३.५ प्रजापति व देव, मनुष्य, असुर आख्यान (वृहदारण्यकोपनिषद्)

वृहदारण्ययकोपनिषद् के पाँचवें अध्याय में प्रजापति के साथ देव, मानव व असुर के संवाद का वर्णन है। जब वे तीनों प्रजापति के समक्ष उपस्थित हुए तो उन्होंने प्रजापति को उपदेश करने के लिए कहा।

[219] छान्दोग्योपनिषद् ७.२२

त्रया: प्राजापत्या: प्रजापतौ पितरि ब्रह्मचर्यभूषुर्देवा मनुष्या असुरा: उषित्वा ब्रह्मचर्यं देवा ऊचुर्ब्रवीतु नो भवानिति तेभ्यो हैतदक्षरमुवाच द इति व्याज्ञासिष्टा ३ इति व्यज्ञासिष्मेति होचुर्दाम्यतेति न आत्थेत्योमिति होवाच व्याज्ञासिष्मेति।[220]

प्रजापति जगत् के विभिन्न प्राणियों के उत्पादक माने गए हैं। देव, मनुष्य और असुर ये तीनों प्रजापति के ही तीन पुत्र माने गए हैं। तीनों पुत्रों ने प्रजापति के यहाँ ब्रह्मचर्यवास किया। जब उनका जाने का समय आया तो सर्वप्रथम देवों ने उनसे कहा कि आप हमें उपदेश करें तो उनसे प्रजापति ने 'द' कह दिया और देवों ने इसका अर्थ 'दमन करो' ऐसा लेकर वहाँ से चले गए। इसके बाद मानवों से प्रजापति को उपदेश करने के लिए कहा तो उनको भी प्रजापति ने 'द' ऐसा कह दिया और पूछा कि समझ गए क्या? मानव बोले कि आप हमसे 'दान करो' ऐसा कहना चाहते हो। प्रजापति बोले कि तुमने ठीक समझा। ऐसा मानकर मानव भी वहाँ से चले गए। इसके बाद असुर आए और वे भी प्रजापति से उपदेश के लिए बोले तो उनको भी प्रजापति ने 'द' कहकर पूछा कि समझ गए क्या? असुर बोले कि आप हमसे 'दया करो' ऐसा बोल रहे हो। प्रजापति ने कहा कि ठीक समझे। इस प्रकार ये तीनों एक ही वर्ण 'द' का अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार अर्थ लेकर चले गए।

---

[220] वृहदारण्ययकोपनिषद् ५.२

सृष्टि में रहने वाले सभी जीव अलग-अलग प्रकृति के हैं और उनके स्वभाव भी इसीलिए अलग-अलग हैं। अत: विभिन्न लोग एक ही ज्ञान अथवा वस्तु का अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार प्रयोग करते हैं। इसीलिए प्रजापति ने इस तीनों को द द द ऐसा उपदेश किया।

सत्य के तीन अक्षरों को स्पष्ट करते हुए इसी उपनिषद् में कहा गया है-

आप एवेदमग्र आसुरता आप: सत्यमसृजन्त सत्यं ब्रह्म प्रजापतिं प्रजापतिर्देवाँस्ते देवा: सत्यमेवोपासते तदेतत् त्र्यक्षरँसत्यमिति स इत्येकमक्षरं प्रथमोत्तमे अक्षरे सत्यं मध्यतोऽनृतं तदेतदनृतमुभयत: सत्येन परिगृहीतँ सत्यभूयमेव भवति नैवं विद्वाँसमनृतँहिनस्ति।[221]

ऋषि कहते हैं कि सृष्टि के प्रारम्भ में केवल जल ही था। उस जल से ही सत्य की रचना हुई। ब्रह्म ने प्रजापति को और प्रजापति ने देवताओं को उत्पन्न किया। वे देवगण ही सत्य की उपासना करते हैं। जो तीन अक्षरो वाला है। प्रथम 'स' यह एक अक्षर है, 'ती'[222] यह दूसरा अक्षर है और 'य' तीसरा अक्षर है। इनमें पहला और तीसरा अक्षर

---

[221] वृहदारण्ययकोपनिषद् ५.५.१

[222] 'ती' वास्तव में 'त्' है। इसको 'ती' स्पष्ट उच्चारण के लिए वर्णित किया गया है यथा- ती इति ईकारानुबन्धो निर्देशार्थ:।
- वृहदारण्ययकोपनिषद्. शां भा. पृ. ११९४

सत्य है और मध्य का अनृत है जो दोनों ओर से सत्य से घिरा हुआ है। अत: यहाँ पर सत्य की ही प्रधानता है।

उपसंहार

उपनिषदों में वर्णित आख्यानों में अनेक ऐसे वचन हैं जो नीतिगत शिक्षाओं को वर्णित करते हैं। सत्य, दान, दमन, दया, निष्ठा और तपस्या आदि अनेक ऐसे गुण हैं जो मानव मात्र के द्वारा अनुकरण करने योग्य हैं। काम, क्रोधादि शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके मनुष्य अपने जीवन में आध्यात्मिक उन्नति करके अभीष्ट स्थिति को प्राप्त कर सकता है। कठोपनिषद् से लेकर वृहदारण्यकोपनिषद् तक के सभी प्रमुख उपनिषद् इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं कि अन्य पक्षों के साथ साथ उपनिषद् नैतिक मूल्यों से भी परिपूर्ण हैं।

चतुर्थ अध्याय

प्रमुख उपनिषदों के आख्यानों का दार्शनिक पक्ष

उपनिषद् का अन्य नाम 'वेदान्त' होने के कारण यह वेद का अन्तिम भाग माने जाते हैं। एक ओर संहिताओं व ब्राह्मणों में कर्मकाण्ड का विशद विवेचन है। जहाँ पर अनेक प्रकार के अग्निहोत्र कर्मों के द्वारा स्वर्ग आदि की कामना की गई है तथा किए जाने योग्य कर्मों को करने हेतु मानव को प्रेरित किया गया है। इसके साथ न किए जाने कर्म अथवा निषिद्ध कर्मों का मानव के लिए निषेध भी किया गया है। दूसरी ओर आरण्यकों व उपनिषदों में ज्ञानकाण्ड की अविरल धारा प्रवाहित होती है। जो कर्मों की अपेक्षा सत्य ज्ञान व अनुभव पर बल देता है। आत्मा के वास्तविक अस्तित्व का वर्णन उपनिषदों में ही प्राप्त होता है। सृष्टि अपनी उत्पत्ति से पूर्व किस अवस्था में थी? सृष्टि के उत्पत्तिक्रम में सबसे पहले कौन सा तत्व आया और उससे क्रमश: किस प्रकार सृष्टि अपने वास्तविक स्वरूप में आयी? मानव का इस सृष्टि में क्या स्थान है? अन्य जीवों के प्रति उसका क्या दायित्व है? सृष्टि में आने के पश्चात उसके भौतिक जीवन का लक्ष्य क्या है? उसे इस संसार को किस दृष्टि से देखना चाहिए इत्यादि प्रश्नों के उत्तर उपनिषदों में ही सारगर्भित रूप में प्राप्त होते हैं। इन बातों के आधार पर ही उपनिषदों को न मात्र दर्शन से परिपूर्ण ग्रन्थ अपितु उपनिषद् – दर्शन की ही संज्ञा विद्वानों ने दे दी। उपनिषदों में

वर्णित ये दार्शनिक वचन पाठकों को सत्य जानने के लिए प्रेरित करने में पूर्णतया समर्थ हैं। उपनिषदों में आए हुए अनेकों आख्यान दार्शनिक जिज्ञासाओं को शान्त करते हैं जिनका विवेचन इस अध्याय में किया जाएगा।

४.१ गुरु-शिष्य आख्यान (केनोपनिषद्)

केनोपनिषद् के नाम से ही ज्ञात होता है कि इस उपनिषद् में 'केन' पद के ऊपर विचार किया गया है। शिष्य अपने गुरु से यह प्रश्न करता है कि हमारे मन, वाणी, नेत्र आदि किस आन्तरिक शक्ति से प्रेरित होते हैं-

केनेषितं पतति प्रेषितं मन: केन प्राण: प्रथम: प्रैति युक्त:।

केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षु: श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति॥[223]

ऐसी कौन सी प्रेरक शक्ति है जो मन को कार्य करने के लिए प्रेरित करती है, किसके द्वारा प्रेरित हुआ यह प्राण शरीर में कार्य करता है, वाणी किससे प्रेरणा व सामर्थ्य पाकर बोलती है और आँखें तथा कान किस देवता की उपासना करते है?

समाज में रहने वाले व्यक्ति के मन में चिन्तन करने पर इस प्रकार के प्रश्नों का उद्वेलित होना स्वाभाविक है और ऐसा होना भी आवश्यक है। सृष्टि में उत्पन्न समस्त

---

[223] केनोपनिषद् १.१

जीवों में मानव ही एक ऐसा प्राणी है, जो चिन्तन शक्ति से युक्त है। उसी में यह सामर्थ्य है कि वह अपने भूत, भविष्य और वर्तमान के विषय में विचार कर सकता है। यह भारतीय संस्कृति का एक परिचायक भी है कि व्यक्ति को चिन्तनशील होना चाहिए। जो व्यक्ति चिन्तन नहीं करता, जिसको इस संसार में अपनी स्थिति का ज्ञान नहीं है, वह एक सुव्यवस्थित जीवन को नहीं जी सकता।

शिष्य के इस प्रकार के दार्शनिक प्रश्न करने पर गुरु उत्तर देते हुए कहते हैं-

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनस: मनो यत् वाचो ह वाचँ स उ प्राणस्य प्राण:।

चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीरा: प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥[224]

जो कानों का भी कान अर्थात् प्रेरक है, जो मनों का भी प्रेरक मन है, जो वाणियों की भी प्रेरक वाणी है, जो प्राणों का भी प्रेरक प्राण है तथा जो नेत्रों का भी प्रेरक नेत्र है उस परमप्रेरक शक्ति को जानकर लोग इस जगत् के रहस्य को जानकर अमृतत्व को प्राप्त करते हैं।

ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ मानव के शरीर को अनेक प्रकार के कार्यों को करने में समर्थ बनाती हैं। इनके माध्यम से ही वह बाहर की वस्तुओं को देख सकता है, सुनाई देने वाली बातों को सुन सकता है, श्वास-प्रश्वास ले सकता है, मन में आने वाले शब्दों

---

224 केनोपनिषद् १.२

को बोल सकता है। परन्तु इन सब के पीछे भी एक अद्वितीय शक्ति प्रेरक के रूप में कार्य करती है और इन सभी इन्द्रियों को अपने-अपने कार्यों को करने हेतु प्रेरित करती है, उसी का वर्णन इस मन्त्र में किया गया है।

आगे गुरु उस प्रेरक शक्ति की सामर्थ्य तथा उस तक इन्द्रियों के जाने की असमर्थता को बताते हुए कहते हैं-

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि। इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्यचचक्षिरे॥[225]

उसी एक प्रेरक शक्ति को जानना मानव-जीवन का ध्येय है। जबकि उस शक्ति तक पहुँचना सरल नहीं है। न वहाँ तक नेत्र जा सकते हैं अर्थात् नेत्र उस शक्ति को नहीं देख सकते, वाणी भी उस शक्ति को स्पष्टतया बता नहीं सकती, मन उसका सरलता से विचार नहीं कर सकता। उस प्रेरक शक्ति को हम दूसरों से ही जान पाते हैं कि वह ऐसा है। जबकि वह शक्ति जिसे ब्रह्म माना जाता है, इन सब सुने सुनाए हुए वचनों से ऊपर है।

---

[225] केनोपनिषद् १.३

हमारे उपनिषदों की आदिकालीन ऋषियों ने ही भली-भाँति व्याख्या करके हमें बताया था।

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युपद्यते।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।[226]

गुरु अपने शिष्य से कहते हैं कि जिसको वाणी से नहीं बताया जा सकता अर्थात् वाणी उसे बोलने में समर्थ नहीं है। अपितु जिससे प्रेरणा पाकर ही वाणी बोलने में समर्थ होती है, उसी को तुम ब्रह्म के रूप में जानो। वाणी से बताने में आने वाले जिस तत्व की लोग उपासना करते हैं उसको मत जानो।

वाणी से व्यक्ति प्रतिदिन हजारों शब्द बोलता है। अपने मन की बातों को दूसरों तक पहुँचाता है जिससे लोग उसकी बातों को समझ पाते हैं। इस क्रिया के बिना सम्प्रेषण मुश्किल है तथा सम्प्रेषण के अभाव में व्यक्ति दैनिक जीवन नहीं चला सकता। अपने प्रतिदिन जीवन में उसको अनेक व्यक्तियों तक अपनी बात पहुँचानी होती है। अपने मन के उद्गार दूसरों तक पहुँचाने का महत्त्व है कि मूक व्यक्ति से जानकर यदि देखा जाए तो वास्तविकता ज्ञात हो जाती है। वह व्यक्ति अपनी बात को दूसरे तक

---

226 केनोपनिषद् १.४

पहुँचाने में किस कठिनाई का अनुभव करता है, यह वही जानता है। उस वाणी की प्रेरक शक्ति की बात यहाँ पर कही गई है।

यन्मन्सा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।।[227]

जो मन के द्वारा जानने में नहीं आता बल्कि जिसकी प्रेरणा से मन जानने में समर्थ होता है। उसी को तुम ब्रह्म के रूप में जानो। मन से जानने में आने वाले जिस तत्व की लोग उपासना करते हैं उसको मत जानो।

मन भी शरीर का एक मुख्य अन्त: करण है। जैसा कि पूर्व में बताया गया है कि चिन्तन करना भी व्यक्ति का ही स्वभाव है। प्रत्येक व्यक्ति चिन्तन कर भी नहीं सकता। उसके लिए व्यक्ति में छल, ईर्ष्या, व असत्य आदि दोषों का शून्य होना आवश्यक है। तथापि उस शक्ति का स्थान मुख्य है जो व्यक्ति को मनन करने हेतु प्रेरित करती है।

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।।[228]

---

227 केनोपनिषद् १.५

228 केनोपनिषद् १.६

जो नेत्रों के द्वारा देखा नहीं जा सकता बल्कि नेत्र जिसके द्वारा प्रेरणा पाकर देखने में समर्थ होते हैं। उसी को तुम ब्रह्म के रूप में जानो। नेत्र से बताने में देखने वाले जिस तत्व की लोग उपासना करते हैं उसको मत जानो।

दर्शन दो प्रकार से होता है। एक दर्शन नेत्रों से होता है, जिसके लिए नेत्रशक्ति का होना आवश्यक है। दूसरा दर्शन अन्त: करण से होता है जिसके लिए शुद्ध अन्त: करण का होना आवश्यक है। यहाँ पर नेत्र शक्ति वाले दर्शन की चर्चा की जा रही है। उस नेत्र को शक्तिप्रदाता प्रेरक प्राप्त हो, यही कामना यहाँ पर की गई है।

यच्छ्रोत्रेणा न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।।[229]

जो कानों से सुना नहीं जा सकता अपितु कान जिससे प्रेरणा पाकर सुनने की शक्ति को ग्रहण करते है। उसी को तुम ब्रह्म के रूप में जानो। कानों से सुनने में देखने वाले जिस तत्त्व की लोग उपासना करते हैं उसको मत जानो।

अच्छा बोलने के लिए अच्छा सुनना आवश्यक है। इसीलिए कहा भी जाता है कि एक अच्छा वक्ता होने के लिए एक अच्छा श्रोता होना अत्यन्त आवश्यक है। श्रवणशक्ति सुचारु रूप से अपना कार्य करती रहे, यह प्रत्येक व्यक्ति की कामना होती है। श्रवण के

[229] केनोपनिषद् १.७

पीछे क्रियाशील वह सामर्थ्य जिससे कान सुनने की क्षमता प्राप्त करते हैं, उसको ही जानना व्यक्ति को अभीष्ट है।

यत् प्राणेन न प्राणिति येन प्राण: प्रणीयते।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।।[230]

जो प्राण के द्वारा कोई भी चेष्टा नहीं करता अपितु प्राण जिससे प्रेरणा पाकर चेष्टा करने में समर्थ होते हैं, उसी को तुम ब्रह्म के रूप में जानो। प्राण से चेष्टा करने वाले जिस तत्व की लोग उपासना करते हैं उसको मत जानो। इसके दूसरे खण्ड में गुरु अपने शिष्य को ब्रह्मज्ञान के विषय में सावधान करते हुए कहता है कि

यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेंवापि

नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम्।

यदस्य त्वं यदस्य देवेष्वथ नु

मीमाँस्यमेंव ते मन्ये विदितम्॥[231]

---

[230] केनोपनिषद् १.८

[231] केनोपनिषद् २.१

हे शिष्य! यदि तू यह मानता है कि वेदादि शास्त्रों को पढने के पश्चात् तूने ब्रह्म को जान लिया है तो इससे यह ज्ञात होता है कि तूने ब्रह्म को थोड़ा ही जाना है क्योंकि अभी तेरे अन्दर अहंकार की उपस्थिति है। जबकि ब्रह्मज्ञानी का प्रथम लक्षण अहंकार शून्यता है। इसीलिए ब्रह्म का ज्ञान अभी तुझे नहीं हुआ है। ब्रह्मज्ञान के विषय में यह भी सत्य है कि जितना तुझे ज्ञात है और जितना देवों को ज्ञात है, वह दोनों मिलाकर भी तुम्हारा ब्रह्म के विषय में बहुत ही थोड़ा ज्ञान है और इसीलिए जिस ज्ञान का तुम दावा करते हो वह नि:सन्देह विचारणीय है।

ब्रह्मज्ञान के विषय में गुरु के इस प्रकार की शिक्षा देने के बाद शिष्य भी उसी दिशा में अपना विचार बताता है-

नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च।

यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च॥[232]

मैं यह दावा नहीं करता कि मैं ब्रह्म को भली-भाँति जान गया हूँ और न ही यह कहता कि बिल्कुल नहीं जानता। ब्रह्मज्ञानी के विषय में यह सत्य है कि जो नहीं जानता, वह जानता है और जो जानता है, वह नहीं जानता अर्थात् जानने वाले में अहंकार नहीं होता और न जानने वाले में अहंकार होता है।

---

[232] केनोपनिषद् २.२

गुरु व शिष्य के मध्य ब्रह्मज्ञान के विषय में संवाद पर श्रुति निष्कर्ष प्रस्तुत करती है-

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद स:

अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्॥[233]

जिसके द्वारा ब्रह्म नहीं जाना हुआ है तो इसका अर्थ है कि वह व्यक्ति दावा नहीं करता कि वह जान चुका है। अत: उसमें अहंकार नहीं है और वह वास्तव में जान चुका है। इसके विपरीत जिसके द्वारा ब्रह्म जाना हुआ है उसमें अहंकार है और वह जानने का दावा करता है अत: उसने नहीं जाना है।

व्यक्ति को अपने आस-पास के लोगों का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि जो विद्वान लोग हैं वे अपेक्षाकृत कम बोलते है और अच्छा बोलते हैं। जितना बोलते है उसको सोच-समझकर बोलते हैं। फिर भी वह व्यक्ति कभी भी यह दावा नहीं करता कि वह किसी भी विषय में अधिक जानता है। ऐसे लोगों में अहंकार कम होता है। इसके विपरीत समाज में ऐसे भी अनेकों लोग होते हैं जो आवश्यकता से अधिक बोलते हैं वो भी बिना सोचे-समझे। कभी भी किसी भी व्यक्ति के सामने प्रयुक्त की जाने वाली वाणी पर वह कभी ध्यान ही नहीं देते। ऐसे व्यक्ति अहंकार से ग्रस्त होते हैं और यह दावा

---

[233] केनोपनिषद् २.३

करते हैं कि वे सब कुछ जानते हैं। इस प्रकार के अहंकार का नाश ही सत्य ज्ञान की प्राप्ति होने पर होता है।

गुरु अपने शिष्य को ब्रह्म को जानने के फल के विषय में बताता है-

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहवेदीन्महती विनष्टि:।

भूतेषु भूतेषु विचित्य धीरा: प्रेत्यास्माल्लोकादमृता: भवन्ति॥[234]

यदि तुम इस जीवन में ब्रह्म को जान गए तो सत्य को जान जाओगे और तुम्हारा कल्याण होगा। यदि सम्पूर्ण जीवन में नहीं जान पाए तो जीवन व्यर्थ में ही नष्ट हो जाएगा। धैर्यवान् लोग सृष्टि के प्रत्येक कण में उस ब्रह्म की उपस्थिति को अनुभव करके इस लोक से जन्म मरण के बन्धन से छूटते हैं और अमृतत्त्व को प्राप्त करते हैं।

मानव के भौतिक जीवन का यह लक्ष्य होना चाहिए कि वह इस संसार की अनेक विभिन्नताओं में रहते हुए, उनसे अपनी सभी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति करते हुए उन्हीं में उस एकत्व को खोजने का प्रयास करे, जो सभी तत्त्वों में विद्यमान रहता है। संसार में जितने भी महापुरुष, चिन्तक, विचारक व समाज-सुधारक हुए हैं, उन सबने इसी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए वैराग्य से युक्त होकर अपना जीवन बिताया है। यदि इस सत्य को वह जान लेता है तो उसका जन्म सार्थक है।

---

[234] केनोपनिषद् २.५

४.२ यम – नचिकेता आख्यान (कठोपनिषद्)

कठोपनिषद् में यम व नचिकेता के मध्य संवाद प्रसिद्ध है। जिसका वर्णन पूर्व में भी किया जा चुका है। उसी संवाद में आत्मज्ञान के विषय में बताते हुए यमराज नचिकेता को रथ का उदाहरण देते हुए शरीर के विभिन्न अंगों के महत्त्व के विषय में बताते हैं-

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरँ रथमेंव तु।

बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मन: प्रग्रहमेंव च॥[235]

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयाँस्तेषु गोचरान्।

आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुमनीषिण:॥[236]

हे नचिकेता! आत्मा को रथ पर बैठा हुआ मानों और शरीर को रथ मानों। बुद्धि का कार्य एक सारथि का है जो शरीर रूपी रथ को वश में करता है। मन रस्सियों के समान है तथा विभिन्न इन्द्रियाँ घोड़े हैं। मन, आत्मा व इन्द्रियों के मध्य स्थित है और

---

[235] कठोपनिषद् १.३

[236] कठोपनिषद् १.४

विषय उन घोडों के विचरने के मार्ग हैं। इस प्रकार शरीर, इन्द्रिय और मन इन तीनों के साथ रहने वाला जीवात्मा ही भोक्ता है ऐसा मनीषी लोग कहते हैं।

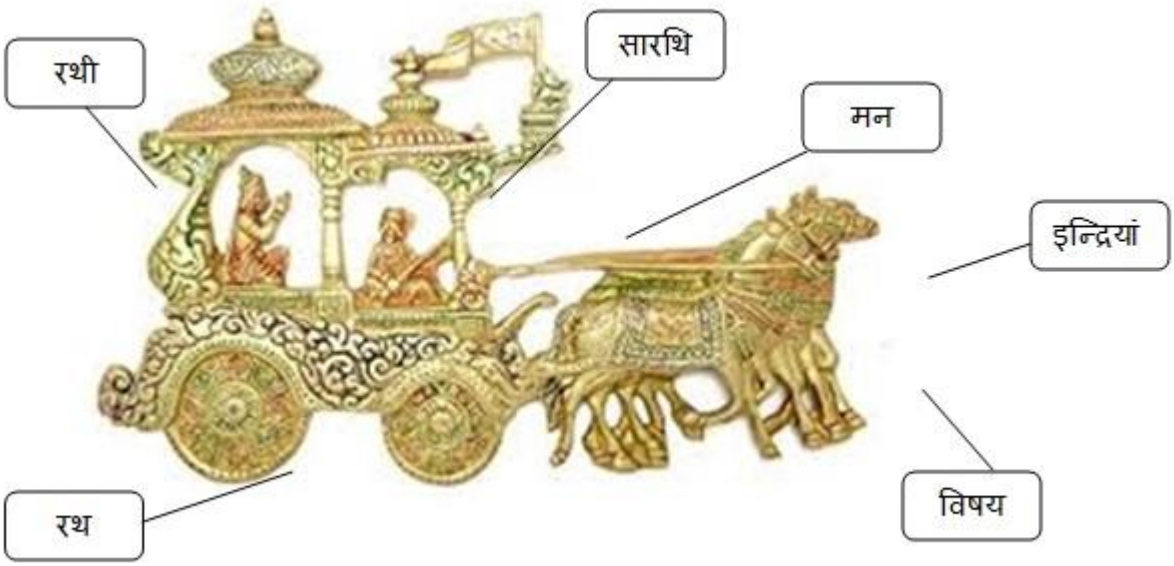

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा।

तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथे॥[237]

[237] कठोपनिषद् १.३.६

जो विवेक युक्त बुद्धि वाला मनुष्य मन तथा इन्द्रियों को सदैव अपने वश में रखता है, वह अपने अन्त: करण को ईश्वरभक्ति, ब्रह्मजिज्ञासा तथा अन्तिम सत्य को जानने में लगाता है। इसी सन्मार्ग पर चलते हुए वह लौकिक जगत् में भी सभी प्राणियों को अपनी भाँति देखते हुए व्यवहार करता है। उसकी इन्द्रियाँ सदैव कुशल सारथी की तरह अच्छे घोड़ों की भाँति वश में रहती हैं।

आगे इसके विपरीत स्थिति का वर्णन भी यम नचिकेता के सामने करते हैं-

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा।

तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथे:॥[238]

जो अविवेक से युक्त बुद्धि वाला मनुष्य मन तथा इन्द्रियों को सदैव अपने वश में नहीं रखता है, वह अपने अन्त: करण को ईर्ष्या, द्वेष तथा छल करने में लगाता है। इसी मार्ग पर चलते हुए वह लौकिक जगत् में सभी प्राणियों को अपने प्रतिस्पर्धी की भाँति देखते हुए व्यवहार करता है। उसकी इन्द्रियाँ कभी भी सारथी की तरह घोड़ों को अपने वश में नहीं रख पाती।

चंचल मन वाले तथा चिन्तनहींन मनुष्य को किसी भी तथ्य को समझने में बड़ी कठिनाई होती है। किसी भी विषय को तब समझ पाते हैं जब हम अपने इन्द्रियों व मन

---

238 कठोपनिषद् १.३.५

को उसमें समाहित कर लेते है, इसी स्थिति में ही उसके मानसपटल पर ग्रहण की जाने वाली वस्तु एकाकार हो पाती है। जिसकी इन्द्रियाँ उसके वश में नहीं हो पाती, वह कभी भी विषय को ठीक प्रकार से ग्रहण नहीं कर पाता।

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते।

दृश्यते त्वग्रयया बुद्धया सूक्ष्म्या सूक्ष्मदर्शिभि:॥[239]

यम नचिकेता को आत्मा के विषय में बहुत स्पष्टतया को बताते हैं कि वह आत्मा बीज के रूप में सृष्टि के सभी भूतों में विद्यमान है जिसको प्राचीन ऋषियों ने तथा आधुनिक वैज्ञानिकों ने अनुभव किया है। वह शक्ति सरलता से कण- कण में दिखाई नहीं देती परन्तु उसकी विद्यमानता पर कोई प्रश्न नहीं उठाया जा सकता। उसको अनुभव करने के मार्ग को ही आगे ऋषि बताते हैं कि उसको कुशाग्र बुद्धि की सहायता से सूक्ष्मदर्शी ऋषियों के द्वारा देखा जा सकता है। यह सूक्ष्मदर्शिता सभी मानवों को प्राप्त नहीं हो सकती, फिर भी कुछ चिन्तकों ने इसको अनुभव किया है।

इस प्रकार ब्रह्मज्ञान के विषय में बताने के पच्चात् श्रुति कहती है-

उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।

---

[239] कठोपनिषद् १.१२

क्षुरस्य जाग्रत निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति॥[240]

उठो, जागो और ऋषियों के द्वारा बताए हुए वरों को प्राप्त करने के लिए प्रयास करो। उनके द्वारा मार्गदर्शित किए गए मार्गों का अनुसरण करके उन पर निष्ठापूर्वक चलते हुए उस ब्रह्म के विषय में ज्ञान को प्राप्त कर लो। आगे श्रुति उस ज्ञान के मार्ग के विषय में कहती है कि वह मार्ग सामान्य व सरल न होकर तलवार की धार के समान है। जैसे तलवार की धार पर हाथ तेज लगने से कट जाता है उसी प्रकार ब्रह्मज्ञान के मार्ग पर थोड़ी असावधानी से व्यक्ति को नुकसान हो जाता है। इस मार्ग पर चलना तपस्या के समान है। मन व इन्द्रियों को वश में करके अनुशासनपूर्वक इस धर्ममार्ग का पालन किया जा सकता है।

अन्त में यम और नचिकेता के इस आख्यान के महत्त्व को बताया गया है-

नाचिकेतमुपाख्यानं मृत्युप्रोक्तँ सनातनम्।

उक्त्वा श्रुत्वा च मेंधावी ब्रह्मलोके महीयते।।[241]

---

[240] कठोपनिषद् १.१४

[241] कठोपनिषद् १.३.१६

अर्थात् यम व नचिकेता के मध्य इस संवाद का नाम नाचिकेत उपाख्यान है। जो व्यक्ति इसको जानकर इसके अनुसार आचरण करता है, वह यशस्वी व मेधावी होकर ब्रह्मलोक में अनन्त महिमा को प्राप्त करता है।

उपनिषद् वाङ्मय में कठोपनिषद् में उल्लिखित यमराज व नचिकेता के मध्य यह संवाद अत्यन्त दार्शनिक है। इसमें मानव जीवन की समस्त आकांक्षाओं के उत्तर देते हुए यह बताया गया है कि इस भौतिक जीवन के बाद मानव शरीर की क्या स्थिति होती है? नश्वर शरीर के मरने के बाद आत्मा की क्या स्थिति होती है? आत्मा की मुख्य विशेषताएँ क्या है?, इत्यादि सभी प्रश्नों के उत्तर इस आख्यान के अध्ययन से प्राप्त होते हैं।

४.३ **पिप्पलाद-कबन्धी आख्यान (प्रश्नोपनिषद्)**

प्रश्नोपनिषद् में सुकेशा, सत्यकाम, सौर्यायणी, आश्वलायन, भार्गव और कबन्धी आदि ऋषि पिप्पलाद ऋषि के पास जाकर प्रजा की उत्पत्ति से सम्बन्धित अनेक प्रश्न पूछते हैं। ऋषि पिप्पलाद भी विस्तारपूर्वक उनके उत्तर देते हैं। दार्शनिक प्रश्नों के पूछे जाने से प्रारम्भ होने के कारण ही इस उपनिषद् को प्रश्नोपनिषद् कहा जाता है। जिसमें सबसे पहले कबन्धी ऋषि प्रश्न करते हुए कहते हैं-

अथ कबन्धी कात्यायन उपेत्य पप्रच्छ।

भगवन् कुतो ह वा इमा: प्रजा: प्रजायन्त इति॥[242]

कबन्धी पूछते हैं कि हे भगवन्! इस सृष्टि की उत्पत्ति किस प्रकार हुई और यहाँ पर किस तरह प्रजा अर्थात् अनेक प्रकार के जीव-जन्तुओं, वनस्पतियों तथा प्रजातियों का अविर्भाव हुआ। इस विषय में आप हमें विस्तार से बताएँ।

इस प्रश्न के उत्तर में पिप्पलाद ऋषि बताते हैं -

तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजापति: स तपोऽतप्यत स तपस्तस्वा स मिथुनमुत्पादयते। रयिं च प्राणं चेत्येतो बहुधा प्रजा: करिष्यत इति॥[243]

जब इस जगत् के स्वामी परमेंश्वर की प्रजा को उत्पन्न करने की इच्छा हुई तो उसने तप किया और प्रजा को उत्पन्न करने के कारण ही उसको 'प्रजापति' कहा गया। तप करने के बाद एक जोड़ा उत्पन्न किया जिसमें एक 'रयि' था जो सृष्टि में सभी प्रकार के जीवों व पदार्थों का प्रतीक था और दूसरा 'प्राण' था यह जीवों व पदार्थों में विद्यमान चेतना का प्रतीक था। इन दोनों तत्वों रयि व प्राण के माध्यम से फिर प्रजापति से अनेक प्रकार के मानवों, जीवो, जातियों व प्रजातियों की रचना की।

आगे पिप्पलाद ऋषि इन तत्वों की उपस्थिति के विषय में बताते हैं-

---

[242] प्रश्नोपनिषद् १.३

[243] प्रश्नोपनिषद् १.४

आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा रयिर्वा एतत्सर्वं यन्मूर्तं चामूर्तं च तस्मान्मूर्तिरेव रयि:॥[244]

सूर्य प्राण का प्रतीक है और चन्द्रमा रयि का प्रतीक है। प्राण से युक्त होने के कारण सूर्य ऊर्जा, गर्मी व शक्ति से परिपूर्ण है। प्राण का यही स्वभाव है। यह वास्तव में ऊर्जा ही है जो विभिन्न रूपों में अनेक तत्वों में विद्यमान है और सभी तत्त्वों को एक शक्ति प्रदान करती है। ऊर्जा को विज्ञान ने भी माना है जिसके केन्द्र में अनेक प्रकार के बल कार्य करते हैं। सूर्य भी इसीलिए ऊर्जा का एक शक्तिशाली स्रोत कहलाता है। सौर परिवार में अनेक प्रकार के ग्रह और उपग्रह इस ऊर्जा से युक्त हैं।

रयि पदार्थ का प्रतीक है जिसमें ऊर्जा उपस्थित रहती है। सृष्टि में अनेक पदार्थ है जिनका विभाजन विज्ञान में ठोस, द्रव और गैस के रूप में किया गया है। इन सभी पदार्थों में ऊर्जा किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती है। एक पदार्थ दूसरे पदार्थ से ऊर्जा के कारण ही संयोग कर पाता है। मशीनरी में अनेक पुर्जे मिलकर एक बड़ी मशीन का निर्माण करते हैं और फिर वह मशीन ऊर्जा की सहायता से कोई कार्य करने में समर्थ होती है। पदार्थ व ऊर्जा का यह संयोग ही संसार के अस्तित्व में आवश्यक है। यदि

---

[244] प्रश्नोपनिषद् १.५

पदार्थ में ऊर्जा नहीं रहेगी तो पदार्थ कोई भी कार्य नहीं कर पाएगा। अत: इन दोनों का सामञ्जस्य ही सृष्टि में महत्वपूर्ण है।

संवत्सरो वै प्रजापतिस्तस्यायने दक्षिणं चोत्तरं च तद्ये ह वै तदिष्टापूर्ते कृतमित्युपासते ते चान्द्रमसमेंव लोकमभिजयन्ते। त एव पुनरावर्तन्ते तस्मादेत ऋषय: प्रजाकामा दक्षिणं प्रतिपाद्यन्ते। एष ह वै रयिर्य: पितृयाण:॥[245]

ऋषि कबन्धी को बताते हैं कि संवत्सर अर्थात् बारह महीने प्रजापति का प्रतीक है जिसके दो अयन हैं। एक उत्तरायण और दूसरा दक्षिणायन है। एक वर्ष में जो बारह महीने होते हैं उनमें छ: महीने का समय उत्तरायण कहलाता है जिसमें सूर्य उत्तर की ओर प्रवेश करता है। अन्य छ: महीने का समय दक्षिणायन कहलाता है जिसमें सूर्य दक्षिण की ओर प्रवेश करता है।

उत्तरायण का समय उस परमेंश्वर का सर्वान्तर्यामी रूप है जिसमें सूर्य पूर्ण ऊर्जा से युक्त होता है। इस समय जो लोग उस परमशक्ति से युक्त होकर अपने जीवन को सार्थक करते है एवं मुक्ति की कामना करते हैं। दक्षिणायन के समय जो लोग सन्तान की कामना करने वाले है तथा सांसारिक भोगों को भोगना चाहते हैं, यह उनके लिए उचित है। साथ ही

[245] प्रश्नोपनिषद् १.९

अनेक सामाजिक कार्य जैसे पूर्वजों के नाम पर स्मारक बनवाना, परोपकारी कार्य करना, धर्मशाला अथवा विद्यालय बनवाना आदि कार्य करते हैं।

उत्तरायण में किए गए कार्य उस परमेंश्वर के उत्तर अंग की उपासना है और दक्षिणायन में किए गए कार्य उसके दक्षिण अंग की उपासना के प्रतीक हैं।

मासो वै प्रजापतिस्तस्य कृष्णपक्ष: एव रयि: शुक्ल: प्राणस्तस्मादेत ऋषय: शुक्ल इष्टं कुर्वन्तीतर इतरस्मिन्॥[246]

वर्ष के बाद महीना भी प्रजापति का प्रतीक है। उसके पन्द्रह दिन अर्थात् कृष्ण पक्ष रयि है और पन्द्रह दिन अर्थात् शुक्ल पक्ष चन्द्रमा है। जो ऋषिगण निष्कामभाव से यज्ञादि कर्म करते हैं, जिनको इन कर्मों से किसी भी प्रकार की इच्छा या कामना नहीं होती, वे शुक्लपक्ष में इन कार्यों को करते हैं। जो लोग सकाम भाव से यज्ञ इत्यादि का सम्पादन करना चाहते हैं जिनको किसी सन्तानप्राप्ति आदि की कामना होती है वे कृष्णपक्ष में सकामभाव से यज्ञों का सम्पादन करते हैं।

अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव प्राणो रात्रिरेव रयि: प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते ब्रह्मचर्यमेंव तद्यरात्रौ रत्या संयुज्यन्ते॥[247]

---

[246] प्रश्नोपनिषद् १.१२

[247] प्रश्नोपनिषद् १.१३

एक दिवस भी प्रजापति का द्योतक है। इसमें दिन प्राण का प्रतीक है और रात्रि चन्द्रमा का प्रतीक है। इन में सूर्य की उपस्थिति होने से लोग अपने सभी कार्य करते हैं। अध्ययन-अध्यापन, कृषि-कार्य, आवागमन, विचार-चर्चा आदि सभी कार्य लोग दिन में ही कर लेते हैं। रात्रि में करने योग्य एक ही कार्य होता है वह है मैथुन। यही कार्य रात्रि में करना उचित है। जो लोग दिन के समय इस कार्य को करते हैं वे अपना ब्रह्मचर्य नष्ट करते हैं।

एक दिन का इतना दार्शनिक व गूढ अवलोकन उपनिषद् में ही प्राप्त होता है। दिन व रात के समय प्रधानतया उपस्थित रहने वाली शक्तियों का वर्णन भी यहाँ पर किया गया है। दिन के समय प्राण की प्रधानता रहती है और रात्रि के समय चन्द्रमा के प्रधान रहने के कारण ही मनुष्य को दिन के समय प्राण (वीर्य) का नाश करने का निषेध किया गया है।

४.४ गुरु – शिष्य संवाद (तैत्तिरीयोपनिषद्)

तैत्तिरीयोपनिषद् की ब्रह्मानन्दवल्ली में गुरु–शिष्य के मध्य संवाद में ब्रह्म सम्बन्धी चर्चा का वर्णन है। दोनों बाद में वे सृष्टि विषयक संवाद भी करते हैं। सर्वप्रथम श्रुति कहती है-

ब्रह्मविदाप्नोति परम्। तदेषाभ्युक्ता ॥[248]

ब्रह्मज्ञानी ही परमसुख को प्राप्त करता है। इस भाव को व्यक्त करने वाली श्रुति यहाँ पर कही गई है। यहाँ पर परम शब्द के अनेक अर्थ हो सकते हैं। परम सुख, परम आनन्द, परम ईश्वर, परम स्थान व परम शक्ति आदि इस एक परम से समझने चाहिए।

मुण्डकोपनिषद् में भी इसी प्रकार का वाक्य कहा गया है-

ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।[249]

अर्थात् ब्रह्म को जानने वाला व्यक्ति स्वयं ब्रह्म ही हो जाता है। यहाँ पर ब्रह्म का होना पूर्वोक्त परम स्थान को ही बताता है। ब्रह्म को जानने वाले व्यक्ति का अपना अलग अस्तित्व नहीं रहता। उसको अपने स्वरूप का भी भान नहीं रहता तथा अहंकारादि से शून्य होकर वह ब्रह्मभावमय हो जाता है।

गुरु अपने शिष्य को ब्रह्म के विषय में बताते हुए कहते हैं-

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। यो वेद निहितं गुहायां परमें व्योमन्। सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति।[250]

---

[248] तैत्तिरीयोपनिषद् १.१

[249] मुण्डकोपनिषद् १.१

ब्रह्म सत्यस्वरूप व अनन्तज्ञान से युक्त है। यहाँ पर सत्य से अभिप्राय सत्ता से है। उस ब्रह्म की सत्ता सत् है और किसी भी प्रकार की देश, काल व परिस्थिति से परे है। जो उस गूढ व रहस्यात्मक ब्रह्म के विषय में जान लेता है। वह अपनी सभी इच्छाओं पर विजय पा लेता है और ब्रह्मभावमय होकर अपने सभी भोगों का भोग कर लेता है।

सदानन्दयोगीन्द्र कृत 'वेदान्तसार' नामक ग्रन्थ में भी उस आदिशक्ति के विषय में स्वरूप व तटस्थ दोनों लक्षण बताकर यह मंगलाचरण किया गया है-

अखण्डं सच्चिदानन्दं अवाङ्मनसगोचरम्।

आत्मानमखिलाधारम् आश्रयेऽभीष्टसिद्धये॥[251]

आगे गुरु, शिष्य को सृष्टि के उत्पत्ति-क्रम के विषय में बताते हैं-

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाश: सम्भूत:। आकाशाद्वायु:। वायोरग्नि:। अग्नेराप:। अद्भ्य: पृथिवी। पृथिव्या ओषधय:। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुष:। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमय:।[252]

---

[250] तैत्तिरीयोपनिषद् १.२

[251] वेदान्तसार मंगलाचरण

[252] तैत्तिरीयोपनिषद् १.३

उस परमात्मा से सर्वप्रथम आकाश की उत्पत्ति हुई, आकाश से वायु अस्तित्व में आई। वायु से अग्नि का आविर्भाव हुआ। अग्नि से जल की शुरूआत हुई और फिर पृथिवी की उत्पत्ति हुई। इसके पश्चात् पृथिवी से अनेक प्रकार के जीवों व वनस्पति की उत्पत्ति हुई। वनस्पति को ही यहाँ पर औषधि का नाम दिया गया है। अन्न को भी यहाँ पर औषधि के अन्तर्गत ही रखा गया है क्योंकि अन्न भोक्ता को स्वस्थ रखता है तथा उसे ऊर्जा व कार्य करने की शक्ति प्रदान करता है। इसीलिए कहा गया है कि अन्न से पुरुष की उत्पत्ति हुई जो अन्नमय व रसमय है। अन्न को खाकर ही मनुष्य के शरीर में वीर्य (रस) आदि बनता है और इसीलिए पुरुष को रसमय कहा गया है।

वेदान्तदर्शन में यह मान्यता है कि मानव-शरीर पञ्चकोशों से निर्मित है। वे हैं अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, विज्ञानमय कोश, आनन्दमय कोश और मनोमय कोश। इन सभी कोशों के महत्व के विषय में भी गुरु अपने शिष्य को इसी उपनिषद् में बताते है।

अन्नाद्वै प्रजा प्रजायन्ते। याः काश्च पृथिवीँ श्रिताः। अथो अन्नेनैव जीवन्ति। अथैनदपि यन्त्यन्तः। अन्नं हि भूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात्सर्वमौषधमुच्यते।[253]

[253] तैत्तिरीयोपनिषद् २.२.१

अन्न से ही प्रजा की उत्पत्ति होती है। प्रजा के साथ-साथ जो कोई भी जीव इस पृथिवी पर है, वे सब अन्न से ही अपना भरणपोषण करते हैं। इसी क्रिया पर उनका जीवन चलता है। भौतिक शरीर की यह आवश्यकता होती है कि उनको अन्न खाकर व जल पीकर ही जीवित रहना होता है। अत: अन्न से ही जो उत्पन्न हुए जीव है, वह जीवित रहते हैं। अन्त में इसी अन्न में विलीन हो जाते हैं। इसीलिए अन्न सभी भूतों में श्रेष्ठ है। इसे खाकर सभी जीव शक्ति को प्राप्त करते हैं तथा स्वस्थ रहते हैं इसीलिए इसे औषध भी कहा गया है।

तस्माद्वा एतस्मादन्नरसमयादन्योऽन्तर आत्मा प्राणमय:। तेनैव पूर्ण:। स वा एष पुरुषविध एव।[254]

उस अन्नरसमय कोश के बाद यह आत्मा प्राणमय कोश भी है। यह प्राण वह शक्ति है जिसके कारण सभी जीव स्वयं की श्वसन क्रिया के आधार पर जीने में समर्थ हैं। प्राण वह वायु है जो अपने विभिन्न रूपों यथा प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान के रूप में जीवों के शरीर में भिन्न-भिन्न कार्य करती है। इन्हीं सब वायुओं के आधार पर ये सब जीव सम्पूर्णता को प्राप्त करते हैं। प्राण वास्तव में वह चेतना-शक्ति है जिसके कारण

[254] तैत्तिरीयोपनिषद् २.२.२

जीव जीवित रहने की सामर्थ्य रखता है। यदि यह प्राण न रहे तो जीव मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

प्राणं देवा अनु प्राणन्ति। मनुष्या: पशवश्च ये। प्राणो हि भूतानामायु:। तस्मात्सर्वायुषमुच्यते।

प्राणशक्ति की उपस्थिति के कारण ही सभी जीव प्राणी कहलाते हैं। मनुष्य और पशु दोनों के ही जीवन का आधार प्राणशक्ति है। अथर्ववेद में भी इसी बात को अग्रलिखित मन्त्र के द्वारा कहा गया है-

नमो प्राणाय यस्य सर्वमिदं वशे।

यो भूत: सर्वश्येश्वरो यस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम्॥[255]

तस्माद्वा एतस्मात्प्राणमयादन्योऽन्तर आत्मा मनोमय:। तेनैष पूर्ण:। स वा एष पुरुषविध एव।[256]

---

[255] अथर्ववेद २.१५.१

[256] तैत्तिरीयोपनिषद्. २.३.२

प्राणमयकोश के बाद आत्मा का मनोमय कोश बनता है। जो कि आत्मा के भीतर रहता है। मनोमय कोश से ही प्राणमय कोश का निर्माण होता है। उस पुरुष (आत्मा) के तुल्य होने से ही यह मनोमय कोश उस पुरुष के आकार का है।

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्। न बिभेति कदाचनेति। तस्यैष एव शारीर आत्मा य: पूर्वस्य।[257]

गुरु कहते हैं कि जब वाणी आदि कर्मेन्द्रियाँ और श्रौत्र आदि ज्ञानेन्द्रियाँ मन के साथ उस आत्मा को प्राप्त किये बिना ही लौट जाती हैं उस ब्रह्म के आनन्द को जानने वाला पुरुष कभी भय नहीं करता और उस मनोमय पुरुष का यह शरीर के अन्दर रहने वाला आत्मा अन्नमय और प्राणमय कोश से सम्बन्धित है।

तस्माद्वा एतस्माद्मनोमयादन्योन्तर आत्मा विज्ञानमयस्तेनैष पूर्ण:। स वा एष पुरुषविध एव।[258]

मनोमय शरीर से भी सूक्ष्म स्थिति में रहने वाला विज्ञानमय कोश है जो बुद्धिरूप गुफा में निवास करने वाला है। जीवात्मा इस मनोमय शरीर में सर्वत्र व्याप्त है।

---

257 तैत्तिरीयोपनिषद् २.४.१

258 तैत्तिरीयोपनिषद् २.४.२

गीता में भी कहा गया है कि जीवात्मा क्षेत्रज्ञ है और वह शरीर रूपी क्षेत्र में सर्वत्र विद्यमान रहता है-

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।

सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते॥[259]

विज्ञानं यज्ञं तनुते। कर्माणि तनुतेऽपि च। विज्ञानं देवा: सर्वे। ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते। विज्ञानं ब्रह्म चेद्वेद।[260]

विज्ञान अर्थात् बुद्धि ही अनेक प्रकार के यज्ञों का विस्तार करता है तथा शुभ-अशुभ रूपी सांसारिक कर्मों का विस्तार भी यही करता है। जीवात्मा से ही सभी कर्मों को करने की प्रेरणा मिलती है। समस्त इन्द्रियाँ व मन इस ब्रह्म रूपी विज्ञान की ही उपासना करते हैं। इस विज्ञानमय कोश के स्वामी ब्रह्म ही है। अत: विज्ञान को ब्रह्मरूप ही समझना चाहिए।

तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयादन्योऽन्तर आत्माऽऽनन्दमय। तेनैष पूर्ण:। स वा एष पुरुषविध एव।[261]

---

[259] गीता १३.३२

[260] तैत्तिरीयोपनिषद् २.५.१

[261] तैत्तिरीयोपनिषद् २.५.२

इस विज्ञानमय कोश के बाद और भी सूक्ष्म व अन्तिम कोश आनन्दमय कोश है। यह आनन्दमय भी उसी आत्मा का रूप है। सभी प्राणी किसी न किसी रूप में आनन्द को चाहते हैं। सांसारिक जीवन में आनन्द की आवश्यकता सफलतापूर्वक जीवन जीने के लिए आवश्यक होती है, परन्तु न जानने के कारण उसको पा नहीं सकते। यह आनन्दमय कोश उन मनुष्यों के लिए परमात्मा का अंश बनकर सुलभ होता है।

यहाँ पर विज्ञानमय का अर्थ जीवात्मा और आनन्दमय का अर्थ परमात्मा लेना चाहिए। जैसा कि ब्रह्मसूत्र में कहा गया है।

आनन्दमयोऽभ्यासात्[262]

यहाँ पर पूर्व में संक्षेप में बताए गए सृष्टि के उत्पत्ति क्रम को ही विस्तार में बताया गया है-

सोऽकामयत्। बहु स्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा इदँ सर्वंमसृजत यदिदं किं च। तत्सृष्ट्वा तदेनानुप्राविशत्। तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत्। निरुक्तं चानिरुक्तं च। निलयनं चानिलयनं च। विज्ञानं चाविज्ञानं च। सत्यं चानृतं च। सत्यमभवत्।[263]

---

[262] ब्रह्मसूत्र १.१.१२

[263] तैत्तिरीयोपनिषद् २.६.४

गुरु कहते हैं कि जब प्रजापति ने सृष्टि की रचना की कामना की तो यह विचार किया कि यह सृष्टि एक से अनेक हो जाए। इसके लिए उसने तप किया। तप के फलस्वरूप उस प्रजापति ने इस सब भूतों का निर्माण किया जिनका वर्णन पहले किया जा चुका है। यहाँ पर यह भी विशेष ध्यातव्य है कि प्रजापति रूप वह परमात्मा इस सृष्टि का निर्माण करने के पश्चात् स्वयं उससे बाहर नहीं रहा अपितु उसके अन्दर ही प्रवेश कर गया और सृष्टि की प्रत्येक स्थूल व सूक्ष्म गतिविधि को ज्ञान में रखकर इस सृष्टि के संचालन में लगा हुआ है। यह उपनिषद् का प्रवेश वाक्य है। वह परमात्मा सृष्टि में प्रवेश करके मूर्त और अमूर्त दोनों रूपों में उपस्थित हो गया। भाषा से बताया जाने वाला और भाषा से न बताया जाने वाला दोनों रूपों में आ गया। आश्रय देने वाला और आश्रय न देने वाला इन दोनों रूपों में भी आ गया। सत्य और असत्य इन दोनों रूपों में आ गया है। सृष्टि में यह जो कुछ भी देखने और सुनाई देने में आता है वह सब सत्य ही है। ऐसा उपनिषद् का कथन है।

सृष्टि के उत्पत्ति से पूर्व की स्थिति का वर्णन करते हुए गुरु बताते हैं-

असद्वा इदमग्र आसीत्। ततो वै सदजायत। तदात्मानँ स्वयमकुरुत। तस्मात्तत्सुकृतमुच्यत इति।[264]

---

[264] तैत्तिरीयोपनिषद् २.७.१

अपनी उत्पत्ति से पूर्व यह सृष्टि असत् रूप में थी यहाँ पर असत् का अर्थ असत्य न होकर नाम और रूप आदि से रहित होना है। उत्पत्ति और विकास के बाद यह असत् से सत् अर्थात् नाम व रूप से युक्त हुई। पृथिवी से उत्पन्न हुआ प्रत्येक भूत व कण किसी न किसी नाम से जाना गया और उन सभी भूतों, कणों व प्राणियों का कोई न कोई नाम भी अवश्य हुआ। इसी कारण यह सृष्टि सत् कहलायी। परमात्मा के प्रभाव से सृष्टि ने चेतन होने के कारण स्वयं को इस रूप में परिणत किया। इसलिए इसको 'सुकृत' कहा गया।

नासदीय सूक्त में भी इस सम्बन्ध में यह मन्त्र आया है-

न मृत्युरास्सीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न: आसीत्प्रकेत:।

आनीदवातं स्वधया तदेकम् तस्माद्धान्यन्न पर: किंचनाऽऽस ॥[265]

सृष्टि के आरम्भ से पूर्व कुछ भी विद्यमान नहीं था। उस समय मृत्यु-जन्म, रात्रि-दिन आदि कुछ भी अपनी स्थिति में नहीं थे। अपनी क्षमता के फलस्वरूप एकमात्र वह चेतनता ही विद्यमान थी जो बाद में इस सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति का कारण बनी। वेद कहता है कि उस चेतनता के अतिरिक्त उस समय और कुछ भी नहीं था।

---

[265] ऋग्वेद १०.१२९

यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरं कुरुते। अथ तस्य भयं भवति। तत्त्वेव भयं विदुषो मन्वानस्य। तदप्येष श्लोको भवति।[266]

जब तक मनुष्य उस परमात्मा से थोड़ा-सा भी वियोग किए हुए रहता है। तब तक उसको जन्म व मृत्यु रूप चक्र में फंसे रहकर अनेक प्रकार के भय सताते हैं। उदरम् का अर्थ यहाँ पर थोड़ा अथवा छोटी सोच वाला है जिसको छान्दोग्योपनिषद् में अल्पम् कहा गया है। ऐसा मनुष्य प्राणियों में भेद करता हुआ उनसे उसी प्रकार भेदपूर्वक व्यवहार करता है। गुरु बताते हैं कि यह आवश्यक नहीं है कि ऐसा भय किसी अज्ञानी व मूर्ख को ही लगे अपितु जो शास्त्रों आदि के अध्ययन से अभिमानयुक्त लोग हैं और अपने कर्मों के अहंकार से ग्रसित हैं वे भी भय से युक्त रहते हैं क्योंकि ऐसे लोग परमात्मा के सान्निध्य को प्राप्त नहीं कर सकते।

भीषास्माद्वात: पवते। भीषोदेति सूर्य:।

भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च। मृत्युर्धावति पञ्चम इति।[267]

यहाँ पर उपनिषद् का नियमन-वाक्य देते हुए कहा गया है कि सृष्टि के संचालन में परमात्मा का अटल नियम कार्य करता है जिसके आधार पर वह इस सम्पूर्ण सृष्टि को

---

[266] तैत्तिरीयोपनिषद् २.७.४

[267] तैत्तिरीयोपनिषद् ८.१

चलाता है। इसी नियम के अनुसार वायु बहती है, सूर्य दिन–प्रतिदिन उदित होता है। इसी के अनुसार अग्नि और इन्द्र अपने–अपने कार्य करते हैं और मृत्यु भी उसी के अनुसार क्रम से सबके पास चलती रहती है। इसी नियम को वेदों में 'ऋत' कहा गया है। जिसके अनुसार संसार के सभी अंग अपने-अपने कार्य में लगे रहते हैं।

ब्रह्म के द्वारा उत्पन्न सृष्टि में उसकी उपस्थिति को उपनिषद् में इस पंक्ति के द्वारा बताया गया है-

स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एक:॥[268]

जो जीव में आत्मा रहती है और सूर्य, चन्द्र आदि में जो शक्ति रहती है वह दोनों एक ही ब्रह्म शक्ति के दो रूप हैं। ब्रह्म सृष्टि की उत्पत्ति के उपरान्त स्वयं को अनेक रूपों में अभिव्यक्त करता है। उन विभिन्न रूपों का संचालन उस ब्रह्म की चेतना शक्ति से ही संभव है। एकोऽहं बहु स्याम् के सिद्धान्त के आधार पर ब्रह्म अपने को अनेक रूपों में विद्यमान रखता है

४.५ गुरु – शिष्य संवाद (श्वेताश्वतरोपनिषद्)

सृष्टि के आधार के विषय में प्रश्न करता हुआ शिष्य अपने गुरु से प्रश्न करता है-

[268] तैत्तिरीयोपनिषद् २.८.१३

किं कारणं ब्रह्म कुत: स्म जाता

जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठा:।

अधिष्ठाता केन सुखेतरेषु

वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम्॥[269]

इस सृष्टि का प्रमुख कारण क्या है? इस संसार में विचरने वाले ये सब जीव आदि कहाँ से उत्पन्न हुए हैं? किसकी कृपा से अथवा किसको आधार बनाकर सभी प्राणी इस पृथिवी पर जीवन जी रहे है? वह कौन-से शक्ति है जिसने इस सम्पूर्ण जगत् को धारण किया हुआ है? हम किस रचनाकार की बनाई हुई इस सृष्टि में जी रहे हैं? इत्यादि अनेक प्रश्न शिष्य इस उपनिषद् के प्रारम्भ में करता है? फिर गुरु क्रम से शिष्य के इन सभी प्रश्नों का उत्तर देते हैं।

काल: स्वभावो नियतिर्यदृच्छा

भूतानि योनि: पुरुष इति चिन्त्या।

संयोग एषां न त्वात्मभावा

---

[269] श्वेताश्वतरोपनिषद् १.१

दात्माप्यनीश: सुखदु:खहेतो:॥[270]

समय अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति का एक निश्चित अवसर, स्वभाव अर्थात् ब्रह्म का एक नियमित व नियोजित संसार को बनाने का चिन्तन, निश्चित फल को देने वाला कर्म, आकस्मिक घटना, पाँचों महाभूत और जीवात्मा ये सभी सृष्टि–उत्पत्ति में कारण स्वरूप जानने चाहिए। इन सभी का आपस में संयोग इस जगत् की उत्पत्ति का कारण नहीं हो सकता क्योंकि ये भी चेतन आत्मा के अधीन हैं। जब तक इनमें चेतनता नहीं होगी तब तक ये मिलकर सृष्टि नहीं बन सकते। जीवात्मा भी कारण नहीं हो सकता क्योंकि वह सुख और दु:ख के हेतुभूत प्रारब्ध के अधीन है।

अब गुरु सृष्टि की उत्पत्ति के मुख्य कारण को बता रहे हैं-

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्

देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।

य: कारणानि निखिलानि तानि

कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठति स एक:॥[271]

---

[270] श्वेताश्वतरोपनिषद् १.२

[271] श्वेताश्वतरोपनिषद् १.३

वेदों व उपनिषदों के ऋषि ध्यान व चिन्तन आदि के माध्यम से तपस्या करने में निरन्तर लगे रहे और उसी के फलस्वरूप उन्होंने देवों की निगूढ शक्ति चेतना को जाना। यह वही शक्ति है जो इस जगत् के सभी भूतों तथा काल व दिक् आदि तत्त्वों का मुख्य आधार है। प्राचीन विज्ञान में जहाँ काल (Time) व दिक् (Space) को बिल्कुल अन्तिम सत्ता माना जाता था और इनकी परिधि में किए गए माप को एकदम सही माना जाता था। आधुनिक वैज्ञानिकों ने इस विचार को निराधार मानते हुए यह माना कि काल व दिक् के ऊपर भी शासन करने वाली कोई सत्ता है जो इन दोनों को भी संचालित करती है।

सर्वजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते

अस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे।

पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा

जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति॥[272]

गुरु बताते हैं कि सभी भूतों के जीविकारूप तथा सभी के आश्रयभूत विस्तृत ब्रह्मचक्र में यह आत्मा घुमाया जाता है। उस अवस्था में यह आत्मा स्वयं को तथा सम्पूर्ण जगत् के आधारभूत परामात्मा को अलग-अलग मानता है। अनेक वर्षों तक सभी

[272] श्वेताश्वतरोपनिषद् १.६

अवस्थाओं में विचरने के पश्चात् उस परमात्मा से एकाकार होकर अमृतभाव को प्राप्त करके यह जीवात्मा उससे एकाकार हो जाता है और तब इनमें कोई भेद नहीं रहता।

संयुक्तमेतत् क्षरमक्षरं च

व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीश:।

अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावा-

ज्ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशै:॥[273]

यहाँ पर कहते हैं कि इस संसार के विनाशशील पदार्थों व जीवों तथा अविनाशी सूर्य-चन्द्रादि भूतों के संयोग से बने हुए, व्यक्त अर्थात् जो सब यहाँ पर दिखाई देता है और अव्यक्त अर्थात् जो कुछ यहाँ नहीं दिखाई देता, उस भौतिक जगत् को वही एक परमात्मा धारण करता है। जीवात्मा की यही विशेषता है कि वह अनेक प्रकार के भोगों का भोक्ता बने होने के कारण इस संसार बन्धन में पड़ा रहता है और उस एक परमेंश्वर की विद्यमानता का अनुभव करके सभी प्रकार के क्लेशों व बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

---

[273] श्वेताश्वतरोपनिषद् १.८

उपसंहार

उपनिषदों में वर्णित आख्यानों के दार्शनिक पक्ष इतने सारगर्भित व शिक्षाप्रद हैं कि पाठक इनको समझकर सरलता से इनका अनुकरण करने के लिए प्रेरित हो जाता है। दार्शनिक विवेचन से युक्त कथन दोनों प्रकार के हैं। कहीं पर वे इतने सरल हैं कि पाठक सुगमता से उनको समझ जाता है और कहीं पर इतने गूढ हैं कि उदाहरण अथवा श्लोक आदि की सहायता से उनको समझना होता है। फिर भी दार्शनिकता से युक्त कथन व्यक्ति को समाज से हटकर अपने अन्दर देखने के लिए प्रेरित करते हैं।

उपसंहार

एक जागरुक पाठक, जो भारतीय ज्ञान परम्परा के उत्साह को गहराई से जानना चाहता है, इस बात के लिए प्रयत्नशील है कि भारतीय दर्शन किस मार्ग की ओर मनुष्य को प्रेरित करता है, वह ज्ञान के अद्वितीय भण्डार उपनिषदों को जिस भी पक्ष से देखना व समझना चाहे, उसी पक्ष को अपने मस्तिष्क में रखकर देख सकता है। इस शोधकार्य से पूर्व भी उपनिषदों को आधार करके अनेकों शोध देश व विदेशों की धरती पर हुए हैं। उन सभी शोधकार्यों में उपनिषद् शब्द की व्युत्पत्ति से आरम्भ करके उनके अध्ययन व आत्मसात् करने की प्रेरणा पर बल दिया गया है। सभी विद्वानों व भारतीयविद्या के प्रशंसको ने इस बात को एकमत से स्वीकार किया है कि उपनिषद् ज्ञानकाण्ड के प्रमुख ग्रन्थ होने के साथ मानव के मन की अनेक शंकाओं को दूर करते हैं। उपनिषद् मनुष्य को यह बताते हैं कि इस सृष्टि में उसे श्रेय व प्रेय दोनों मार्गों को अपनाते हुए किस प्रकार से अपना जीवन-यापन करना है। उपनिषदों के विस्तृत कलेवर में ऐसे अनेक विषय हैं जिन पर अभी तक हुए शोधकार्यों के अतिरिक्त अन्य वैज्ञानिक व दार्शनिक विषयों पर शोध किया जा सकता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर आज भी देश व विदेशों के विभिन्न शोधार्थी उपनिषदों को प्राथमिक ग्रन्थों के रूप में रखते हैं और अधिकाधिक समय देकर उनमें कुछ नया ज्ञान, जो अभी तक समाज में प्रकाशमान नहीं था, उसको उद्घाटित करते हैं। उपनिषदों के वचन, मन्त्र, अर्थ, आख्यान, संवाद आदि अनेक ऐसे पक्ष हैं

जिनको शोध के माध्यम से अन्वेषित किया जा सकता है और इसी क्रम में प्रस्तुत शोध में प्रमुख उपनिषदों के आख्यानों को केन्द्र में रखते हुए उनका अनुशीलन किया गया है।

प्रथम अध्याय 'विषय-प्रवेश' में वेदों के महत्त्व से प्रारम्भ करके, वेद का अर्थ व लक्षण देते हुए उनके विवरण को प्रस्तुत किया गया है। वेद के चार भागों क्रमश: संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् का उल्लेख करते हुए उनके लक्षणों को भी दिया गया है। कर्मकाण्ड व ज्ञानकाण्ड का परिचय देते हुए वेदों व उपनिषदों के परस्पर सम्बन्ध को बताया गया है। उपनिषदों के अध्ययन से पूर्व कर्मकाण्ड व ज्ञानकाण्ड तथा उनके अन्तर्गत आने वाले ग्रन्थों को समझना आवश्यक है। इसी क्रम में आगे उपनिषदों का अर्थ प्रस्तुत किया गया है। विशरण, गति और अवसादन को ठीक प्रकार से व्याख्यायित करते हुए उपनिषद्-विद्या और उपनिषद्-ग्रन्थ पर विचार किया गया है। उपनिषद् का मुख्य अर्थ विद्या से है और गौण अर्थ ग्रन्थ से है। इसके पश्चात् विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई उपनिषद् की परिभाषाओं पर विचार किया गया है। ज्ञानकाण्ड के आधार पर शोध करने वाले शोधार्थियों के लिए प्रस्थानत्रयी को जानना अति आवश्यक है अत: प्रस्थानत्रयी को उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्र में विभाजित करते हुए स्पष्ट किया गया है। वेदों के अन्तिम भाग होने के कारण उपनिषदों का अन्य नाम 'वेदान्त' माना जाता है। अत: उपनिषद् वेदान्त के रूप में उपनिषद् का विश्लेषण किया गया है।

कुल उपनिषदों की संख्या पर विचार किया गया है। विभिन्न विद्वानों ने उपनिषदों की संख्या अलग-अलग मानी है। प्रकाशकों ने अपने प्रकाशनों में उपनिषदों की ११२ अथवा १०८ संख्या मानी है। अन्त में विभिन्न साक्ष्यों के आधार पर कुल १०८ उपनिषदों को ही स्वीकार किया गया है।

इसके पश्चात् उपनिषदों के काल की बात आती है। भारतीय व पाश्चात्य दार्शनिकों ने उपनिषदों का समय अलग-अलग स्वीकार किया है। एक ओर जहाँ राधाकृष्णन् उपनिषदों का समय ६००ई.पू. से ३०० ई.पू. मानते हैं वहीं दूसरी ओर रानाडे १२०० ई. पू. से ६०० ई. पू. उपनिषदों का समय मानते हैं। अत: इस विश्लेषण के आधार पर इस शोध प्रबन्ध में बृहदारण्यक और श्वेताश्वतर इन दो उपनिषदों को बुद्ध से पूर्व और शेष प्रमुख उपनिषदों को बुद्ध के बाद स्वीकार किया गया है। इसके बाद प्रमुख उपनिषदों की बात कही गई है। सरल शब्दों में, जिन उपनिषदों पर आचार्य शंकर ने भाष्य लिखा है वे ही प्रमुख उपनिषद् माने गए है जिनकी संख्या १० है और श्वेताश्वतरोपनिषद् पर शंकर का भाष्य विवादास्पद है। फिर भी यहाँ पर शोधार्थिनी द्वारा इस उपनिषद् को प्रमुख उपनिषदों के अन्तर्गत रखा है।

प्रमुख उपनिषदों का वेदों से सम्बन्ध बताया गया है। चूँकि प्रत्येक वेद में एक अलग विषय वर्णित है, इसीलिए उससे सम्बद्ध उपनिषद् भी उसी प्रकार की विद्या से युक्त है। अत: सभी प्रमुख उपनिषदों का वेदों से सम्बन्ध बताया गया है। इस अध्याय के

अन्त में प्रमुख उपनिषदों के सामान्य परिचय को भी प्रस्तुत किया गया है। ईशावास्योपनिषद् जैसे कुछ उपनिषद् प्रत्यक्ष वेद के ही भाग हैं और शीक्षावल्ली, ब्रह्मवल्ली, भृगुवल्ली से युक्त तैत्तिरीयोपनिषद् आदि अनेक उपनिषद् विभिन्न विषयों को समायोजित किए हुए हैं।

प्रथम अध्याय 'प्रमुख उपनिषदों के आख्यानों का सामजिक स्वरूप' में उपनिषदों के अन्तर्गत सामाजिक संदेश देने वाले मन्त्रों व वचनों का विश्लेषण किया गया है। समाज की अवधारणा को समझना मनुष्य के लिए नितान्त आवश्यक है। मनुष्यों के ही अनेक समूह मिलकर समाज का निर्माण करते हैं। उस समाज का ढांचा किस प्रकार का होना चाहिए? समाज के अन्दर रहने वाले मनुष्य के अन्तर्सम्बन्ध इस प्रकार के हों कि वे एक-दूसरे को परस्पर सहयोग कर सकें। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की उन्नति में अपना सहयोग दे। आवश्यकता पड़ने पर एक जन दूसरे जन को अपनी ओर से सहायता करे आदि इस प्रकार के प्रावधान समाज के लिए आवश्यक हैं।

उपनिषदों में वर्णित आख्यानों में पति-पत्नी, पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य आदि अनेक ऐसे सम्बन्धों के मध्य सामाजिक विषयों पर विचार हुआ है। समाज में किसी भी भूमिका में रहने वाले प्रत्येक स्त्री व पुरुष के लिए आपसी सम्बन्धों को बनाए रखने के लिए होने वाले ज्ञान का होना बहुत आवश्यक है। उपनिषद् के आख्यान उसी शिक्षा को प्रेषित करते हैं।

कठोपनिषद् में वर्णित प्रसिद्ध यम-नचिकेता संवाद में बालक नचिकेता का स्वभाव व चरित्र जैसा प्रस्तुत किया गया है वैसा आज के समाज के बालकों के लिए अनुकरणीय है। नचिकेता किस प्रकार गौओं से अपना अप्रतिम प्रेम प्रस्तुत करता है और पिता के क्रोधित होने पर उनको शान्त करने का प्रयास करता है। पिता द्वारा क्रोध की अग्नि में जलने पर ही उस बालक को यमराज के पास जाना पड़ा परन्तु उस निडर बालक की क्षमता दर्शनीय है जो कि मृत्यु से तनिक भी भय न करके उसी को विस्तार से जानने के लिए यमराज के द्वार पर चला गया।

यमराज ने प्रसन्न होकर जब बालक को तीन वर मांगने के लिए कहा तो ऐसी स्थिति में यदि कोई अन्य सामाजिक बालक होता तो वह यमराज से अन्य आनन्द व उपभोग की वस्तुएं वरदान में मांग लेता परन्तु बालक ने तीसरे वर के रूप में यमराज द्वारा दिए गए अनेक बहुमूल्य उपहारों को अस्वीकार करते हुए सत्यज्ञान की प्राप्ति को ही श्रेष्ठ व याचनीय माना। यमराज ने बालक की इस प्रतिबद्धता से प्रसन्न होकर उसको आत्मज्ञान का उपदेश भी सहर्ष किया। इस प्रकार के सामाजिक बालक का वर्णन इस आख्यान के पाठक पर स्वत: ही अपना प्रभाव डालता है।

प्रश्नोपनिषद् में महर्षि पिप्पलाद द्वारा कबन्धी ऋषि को प्रजा की उत्पत्ति के विषय में दिया गया ज्ञान प्रत्येक सामाजिक स्त्री व पुरुष के लिए अनुकरणीय है। प्रजापति ने प्रजा की उत्पत्ति करने के समय स्त्री व पुरुष की रचना की। तत्पश्चात् स्त्री व

पुरुष के परस्पर सहवास से आगे उनकी सन्तानोत्पत्ति हुई और जगत् का क्रम आगे की ओर चला। महर्षि पिप्पलाद ने सुखी वैवाहिक जीवन के सम्बन्ध में भी उपदेश किया है। उन्होंने दिन के समय में स्त्री व पुरुष के मध्य सहवास को निषिद्ध मानते हुए समाज के लोगों को यह सन्देश दिया है कि न मात्र सहवास अपितु एक सामाजिक व्यक्ति को प्रत्येक कार्य एक समय के अनुसार करना चाहिए। दिन में स्त्री सहवास करने वाले पुरुष की शक्ति क्षीण होती है और रात्रि में संग करने वाले मनुष्य में शक्ति का विकास होता है। वर्तमान के लोगों को उपनिषद् के इस वचन का पालन करते हुए ही अपना जीवन यापन करना चाहिए। आज के लोगों का जीवन भाग-दौड़ वाला है। व्यक्ति को अपनी आजीविका को कमाने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना पड़ता है। प्रात: से लेकर रात तक उसकी दिनचर्या बड़ी ही व्यस्त रहती है। अनेक ऐसे कार्य हैं जिनको वह समय पर नहीं कर पाता। ऐसे समय में उपनिषद् इस बात का सन्देश देते हैं कि व्यक्ति को अपना सामाजिक जीवन व्यवस्थित तरीके से जीना चाहिए।

मुण्डकोपनिषद् में जीवात्मा व परमात्मा के मध्य दिखाया गया सम्बन्ध मानव को सृष्टि में उसकी स्थिति के विषय में बताता है। मानव को यह स्मरण रखना चाहिए कि उसके द्वारा किया गय प्रत्येक कर्म परमात्मा से प्रेरित है और साथ ही उसके प्रत्येक कार्य को ईश्वर द्वारा देखा जा रहा है। मानव प्रतिदिन अनेक कार्य करता है और अपने

सम्पूर्ण जीवन में अनेक शुभाशुभ काम करता है, उन सभी को उस शक्ति के द्वारा देखा गया है।

तैत्तिरीयोपनिषद् की भृगुवल्ली में वरुण ऋषि अपने शिष्य भृगु को अन्न आदि के महत्त्व के विषय में बताते हैं जो सार्वकालिक समाज के लिए आवश्यक है। आज देश व समाज में पाश्चात्य संस्कृति का विकास हो जाने के कारण मनुष्य अपने देश के ही प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन करने लगा है। वह इन संसाधनों का उपभोग इस सीमा तक करने लगा है कि उसको अपनी आने वाली भविष्य की पीढ़ी की कोई चिन्ता नहीं है। उसकी अगली सन्तान किन संसाधनो के बल पर अपना जीवन चलाएगी? किस ईंधन के सहारे लोग अपने वाहनों से इधर-उधर जाएंगे? यह सब उसकी सोच से परे है। मानव खाद्य-पदार्थों को व्यर्थ करने लगा है। आवश्यकता से अधिक भोजन का उपभोग करना उसका शौक बन गया है। एक ही समाज में एक स्थान पर लोगों को भूख मिटाने के लिए भोजन उपलब्ध नहीं होता और दूसरी जगह उसी भोजन को बेकार फेंक दिया जाता है। समाज में इस प्रकार की विषमता आज साधारण सी बात हो गई है। ऐसी स्थिति में उपनिषद् द्वारा अन्न के विषय में दिया गया उपदेश मानव समाज के कल्याण के लिए है।

तृतीय अध्याय 'प्रमुख उपनिषदों के आख्यानों का सांस्कृतिक पक्ष' है। इस अध्याय के वर्ण्य विषय उपनिषदों की सांस्कृतिक धरोहर है। यह एक विशेष प्रकार की

संस्कृति ही थी जिसमें वेदों से पृथक् ज्ञानकाण्ड के मुख्य प्रतिपादक ग्रन्थ मानव सभ्यता को प्राप्त हुए और भारतवर्ष की धरा को इन्होंने ज्ञान से परिपूर्ण किया। वैदिक संस्कृति इस बात की साक्षी रही है कि इस संस्कृति के समय में मानव को अनेक प्रकार के कर्मों व ज्ञान दोनों ही प्राप्त हुए और इस सभ्यता के लोगों ने अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार दोनों में से एक को अपना लिया।

प्रस्थानत्रयी के अन्तर्गत परिगणित होने वाले अन्य दो ग्रन्थ क्रमश: गीता व ब्रह्मसूत्र दोनों ही भारतीय संस्कृति की विशेषता को और अधिक उन्नत करते हैं। गीता जहाँ मानव को ज्ञानयोग और कर्मयोग दोनों के विषय में बताकर किसी एक को इच्छानुसार चलने के लिए प्रेरित करती है, वहीं ब्रह्मसूत्र मानव को सत्य और मिथ्या ज्ञान के विषय में विस्तार से बताता है। इस प्रकार प्रस्थानत्रयी के तीनों ग्रन्थ अर्थात् उपनिषद्, गीता व ब्रह्मसूत्र तीनों ही मानव के सांस्कृतिक मूल्यों का सवर्द्धन करते हैं।

मुण्डकोपनिषद् में गुरु अपने शिष्य को अग्नि की चिंगारियों का उदाहरण देकर जीवों की जगत् में उत्पत्ति, स्थिति व प्रलय के विषय में बताते हैं। उपनिषद् का पाठक इस सरल उदाहरण से बड़े सहज रूप में संसार में अपनी स्थिति का एक गूढ ज्ञान बड़ी सरलता से प्राप्त कर लेता है। प्रत्येक व्यक्ति को उपनिषद् का ज्ञान जानना चाहिए कि जगत् मे उसकी महत्ता क्या हैं? यह संसार उसकी उत्पत्ति से पूर्व भी चल रहा था और उसके बाद भी यह इसी प्रकार चलता रहेगा। परन्तु वह अहंकारवश यह मानने लगता

है कि इस संसार में उसके आने से कोई परिवर्तन हो गया है। मिथ्याभिमानी व्यक्ति यह मानता है कि समाज की कुछ क्रियाएं उसी के कारण चल रही हैं। जबकि ऐसा बिल्कुल भी नहीं होता। अत: उपनिषद् मानव को इस प्रकार के अहंकार से दूर करता है।

सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में उपनिषद् का यह कथन है कि उस ब्रह्म ने सृष्टि की रचना करते हुए क्रमश: प्रत्येक वस्तु का निर्माण किया। मानव से लेकर वेदादि शास्त्रों का आविर्भाव इसी उत्पत्ति के क्रम में हुआ। रथ के पहिए का उदाहरण देकर यह भी यहाँ पर स्पष्ट किया गया है कि जिस प्रकार पहिए के सभी अरे अलग अलग होने पर भी एक ही केन्द्र में जुड़े रहते हैं, उसी प्रकार इस सृष्टि के सभी जड व चेतन पदार्थ अलग अलग प्रकृति के होने पर भी एक ही परमात्मा से जुड़े रहते हैं। एक परमात्मा से उनका जुड़े रहना उतना ही आवश्यक हैं जितना उन अरों का पहिए के केन्द्र से जुड़े रहना। पहिए के अरों के अलग अलग होने पर जैसे पहिया नहीं चल पाएगा उसी प्रकार जीव भी परमात्मा से अलग होकर अपना अस्तित्व बचाकर नहीं रख सकते।

सर्वज्ञ और सर्ववित् ये दो पद जो इस अध्याय में उद्धृत हैं इन दोनों को ठीक प्रकार समझकर मनुष्य परमात्मा को जान सकता हैं। ये दोनों ही शब्द उस परमात्मा को जीव से अलग व विशेष बनाते हैं। सर्वज्ञ जहाँ परमात्मा को समष्टि के रूप में जानने वाला बताता है। वहीं सर्ववित् उसको अलग अलग सभी जीवों के क्रियाकलापों को

जानने वाला बताता है। परमात्मा की ये दोनों ही विशेषताएं मानवमात्र को जानने योग्य हैं।

तैत्तिरीयोपनिषद् की शीक्षावल्ली के प्रारम्भ में ही गुरु अपने शिष्य को शिक्षा के विषय में उपदेश देते हैं। वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम, सन्तान आदि सभी का उचित ज्ञान प्राप्त करना शिक्षाध्याय के अन्तर्गत आता है। यह मानव को अध्ययन प्रारम्भ करने के पूर्व में ही सिखाया जाता है। इस शिक्षा नामक अध्याय को सीखकर ही बालक आगे अनेक प्रकार की शिक्षाओं को देने वाले ग्रन्थों का अध्ययन करने में समर्थ होता है। आज की शिक्षा व्यवस्था में भी शिक्षा के इन अंगों का इतना ही महत्व है जितना कि पहले वैदिक संस्कृति के समय में था। किसी भी विद्यालय में आज भी बच्चे को सबसे पहले इन्हीं अक्षरमाला व मात्राओं का ज्ञान कराया जाता है।

चतुर्थ अध्याय 'प्रमुख उपनिषदों के आख्यानों का नैतिक पक्ष' में उपनिषदों के आख्यानों की सहायता से मानव के नैतिक विकास पर बल दिया गया है। मानव के नैतिकता का विद्यामान होना उतना ही आवश्यक है जितना कि एक मन्दिर के अन्दर भगवान् की मूर्त्ति का होना। बिना नैतिक मूल्यों के कोई भी मानव-समाज उन्नति नहीं कर सकता। शिक्षा, जो कि एक गुरु के द्वारा अपने शिष्य को दी जाती है, वास्तव में शिष्य के अन्दर नैतिकता का ही विकास करती है। इस अध्याय के प्रारम्भ में ही वर्णित 'यम-नचिकेता' नामक आख्यान में बालक नचिकेता द्वारा यम द्वारा दिए गए सभी

उपहारों को त्यागकर अपनी जिज्ञासा पर अड़े रहना उसकी नैतिकता को ही प्रदर्शित करता है। यमराज ने नचिकेता द्वारा मांगे गए तीसरे वर के रूप में आत्मज्ञान के स्थान पर हाथी, घोड़े, रथ, सेना, रुपया, सम्पत्ति आदि देने के अनेक प्रयास किए परन्तु नचिकेता अपने मानसिक लक्ष्य से तनिक भी इधर-उधर नहीं हुआ और अन्त तक अपनी प्रारम्भिक मांग पर ही अड़ा रहा। यहाँ तक कि यमराज ने उसको सौ वर्ष की आयु देते हुए अनेक अप्सराओं द्वारा उसकी सेवा का भी वर दिया गया परन्तु नचिकेता ने यह माना कि धन से कभी भी कोई मनुष्य तृप्त नहीं हो सकता। भौतिक सुख उसको कभी मानसिक शान्ति प्रदान नहीं कर सकते। अप्सराएं उसको जीवन का वास्तविक सुख नहीं दे सकतीं। अन्त में यमराज ने नचिकेता की इस प्रतिबद्धता से प्रसन्न होकर उसको आत्मज्ञान का उपदेश दिया। यह वास्तविकता है कि धन से आज तक कोई भी मनुष्य सन्तुष्ट नहीं हुआ है। जिसके पास चाहे कितना भी धन हो वह यह चाहता है कि उसके पास कहीं से और धन आ जाए और वह अपनी वास्तविक आर्थिक स्थिति से और ऊपर उठ जाए। जबकि वह अपने से अधिक धनवान् लोगों को भी किसी न किसी कारण से परेशान ही देखता है। आज के युवा लोग पैसे के पीछे इस तरह भागते हैं कि वह चाहते हैं कि उनको कम मेहनत करके अधिक धन की प्राप्ति हो जाए। जबकि सत्यता यह है कि सफलता कभी भी तीव्रता से नहीं मिलती, उसके लिए मनुष्य को काफी समय तक

मेहनत करनी होती है। उपनिषद् में धन के महत्त्व के विषय में कहे गए ये वचन भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने कि पहले थे।

प्रश्नोपनिषद् में पिप्पलाद ऋषि अपने शिष्य कबन्धी को दो प्रकार के कर्मों सकाम व निष्काम के विषय में बताते हैं वह कबन्धी के सामने दोनों कर्मों के द्वारा दिए जाने वाले फलों को बताकर यह कबन्धी की इच्छा पर ही छोड़ देते हैं कि वह किस प्रकार का कर्म करना चाहता है। यह मानव की नैतिक सोच पर निर्भर करता है कि सामाजिक कार्य जैसे सकाम कर्म करके इसी संसार में रहकर जन्म और मृत्यु के व परिवार के बीच रहना चाहता है अथवा निष्काम कर्म करके अमरता को प्राप्त कर इस जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति पाना चाहता है। उपनिषद् सकाम कर्म करने की अपेक्षा निष्काम कर्म करने का उपदेश मानव को करते हैं।

मुण्डकोपनिषद् में अथर्वा ऋषि अपने पास आए हुए शिष्य शौनक को परा और अपरा विद्या का उपदेश करते हैं जो विद्या आरम्भ करने वाले प्रत्येक छात्र के लिए जानना आवश्यक है। अपरा विद्या लौकिक ज्ञान को देने वाली होने से मनुष्य को इसी संसार के विषय में ज्ञान कराती है और इसके विपरीत अपरा विद्या मुक्ति को देने वाली है। इस विद्या को जानकर मनुष्य जीवन के यथार्थ को जानकर सभी प्रकार के विघ्नों से मुक्ति पा सकता है।

आगे ऋषि अपने शिष्य शौनक को कर्मों के विषय में जो उपदेश करते हैं वह भी महत्त्वपूर्ण है। जीवन में कर्मों का बहुत अधिक महत्त्व है। इस सृष्टि का कोई भी प्राणी बिना कर्म किए एक भी पल नहीं रहता। अपने जन्म से लेकर मृत्यु तक वह कोई न कोई कर्म करता ही रहता है। परन्तु यहाँ पर ध्यातव्य है कि वह कौन सा कर्म करे और कौन सा न करे? गीता में भी यही कहा गया है कि

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्॥[274]

सकाम कर्म जहाँ मानव को संसार में और अधिक जोड़ता जाता है वहीं निष्काम कर्म को करके लोग मुक्ति को प्राप्त करते हैं। अनेक लोग समाज में अनेक प्रकार के लोगों की उपासना करते हैं और वह मनुष्यों को ही वास्तविक भगवान् मानकर उन्हीं की उपासना करने लगते हैं। ऐसी भक्ति उनको शान्ति प्रदान नहीं करती। इसीलिए मानव को निष्काम कर्म करना चाहिए।

पञ्चम अध्याय 'प्रमुख उपनिषदों के आख्यानों का दार्शनिक पक्ष' उपनिषदों के दार्शनिक विवेचन पर आधारित है। वास्तव में दर्शन ही उपनिषदों का मुख्य कथनीय है। वेदों में उल्लिखित दार्शनिक वचनों व शिक्षाओं का एक संकलन का नाम ही उपनिषद् माना जाता है। सभी प्रमुख उपनिषद् स्वयं में दार्शनिक उपदेशों के सागर हैं। प्रत्येक

---

[274] गीता

उपनिषद् के आख्यान की चर्चा की जाए तो केनोपनिषद् के प्रारम्भ में ही शिष्य अपने गुरु से अपनी जिज्ञासा को शान्त करने के लिए इन्द्रियों के प्रेरक को जानने के लिए प्रश्न करने पर गुरु बताते हैं कि हमें उसको मुख्य मानना चाहिए, जो हमारे मन को सोचने के लिए प्रेरित करता है। वर्तमान समय में किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व 'मानसिक तैयारी' (Mental Preparedness) नामक शब्द का बहुधा प्रयोग होता है। यह वास्तव किसी कार्य को करने हेतु मन में उसका भली-भाँति चिन्तन है। जिसका सारगर्भित वर्णन इस आख्यान में प्राप्त होता है। आगे गुरु कहते हैं कि हमें उसी की उपासना करनी चाहिए, वाणी को बोलने के लिए प्रेरित करता है, जो आंखों को देखने के लिए प्रेरित करता है, जो प्राणों को श्वसन क्रिया करने के लिए प्रेरित करता है। ये सभी इन्द्रियाँ उसी एक शक्ति से प्रेरणा पाकर कार्य करती हैं जो मनों का भी मन है, प्राणों का भी प्राण है, नेत्रों का भी नेत्र है, वाणियों की भी वाणी है, कानों का भी कान है। इस प्रकार जानने वाले लोग वास्तव में जीवन के यथार्थ को जान लेते हैं। इस प्रकार के दार्शनिक वचन उपनिषदों में ही विद्यमान हैं जिनसे प्रेरणा पाकर अनेक भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने अपनी-अपनी रचनाएं लिखीं हैं।

अहंकार के विषय में बड़ी महत्त्वपूर्ण बात इस उपनिषद् में कही गई है। हिन्दी की प्रसिद्ध कहावत 'अधजल गगरी छलकत जाय' इसी उपनिषद् से प्रेरित है। गुरु अपने शिष्य को बताते हैं कि जिन लोगों में अहंकार होता है। वे लोग थोड़ा सा जानकर यह

दावा करने लगते हैं कि वह बहुत जानते हैं जबकि वास्तव में वे कुछ नहीं जानते। इसके विपरीत जो यथार्थ को जानने वाले हैं वह अहंकारशून्य हो जाते हैं और वे कभी यह नहीं कहते कि वह सच्चे ज्ञान को जान चुके हैं। उपनिषद् के इस वचन का प्रयोगात्मक रूप वर्तमान समाज को बड़ी सरलता से देखा जा सकता है। समाज में ऐसे लोग बहुत मिल जाएंगे जो इस मिथ्याभिमान से ग्रसित हैं कि वे बड़े ज्ञानी हैं और किसी भी विषय में बड़ी अच्छी जानकारी रखते हैं। परन्तु उनका स्वयं इस प्रकार से दावा करना यह प्रदर्शित करता है कि वे वास्तव में थोड़े ज्ञान वाले हैं। जबकि जो लोग विद्वान हैं वे कम बोलते हैं और कभी भी इस प्रकार के वचन नहीं बोलते।

कठोपनिषद् के यम-नचिकेता के संवाद में भी बहुत सी दार्शनिक बाते सामने आती हैं। यम आत्मा का ज्ञान देते हुए नचिकेता से कहते हैं कि मनुष्य इन्द्रियों से बाह्य संसार को तो देख सकता है, परन्तु अपने भीतर देखने के लिए उसको उस शक्ति को पहचानना होगा जो इन सभी इन्द्रियों को अपने-अपने कार्य में प्रेरित करने वाली है। उसी को जानना मानव के जीवन का परम लक्ष्य है। परन्तु आगे यम यह भी बताते हैं कि उस शक्ति को जानने का मार्ग इतना सरल नहीं है। वे कहते हैं सत्य का मार्ग तलवार की धार पर चलने के समान है। जिस पर कोई सामान्य व्यक्ति नहीं चल सकता। उसके लिए व्यक्ति दृढ इच्छाशक्ति वाला होना आवश्यक है।

प्रश्नोपनिषद् के ऋषि पिप्पलाद और कबन्धी के आख्यान में जड व चेतन का वर्णन बड़े अच्छे ढंग से किया गया है। कबन्धी के पूछने पर ऋषि यह बताते हैं कि इस सृष्टि की उत्पत्ति के क्रम में सबसे पहले प्रजापति ने रयि और प्राण की रचना की। ये रयि और प्राण ही लोक में जड और चेतन के रूप में समझे जाते हैं। संसार की रचना में इन दोनों का होना ही आवश्यक है। रयि से पदार्थों की उत्पत्ति होती है तो प्राण से उनमें चेतनता आती हैं जिससे ये पदार्थ अपने अस्तित्व को बनाने में सफल होते हैं। रयि जहाँ एक ओर चन्द्रमा का द्योतक है वहीं दूसरी ओर प्राण सूर्य का द्योतक है जो सबको ऊर्जा प्रदान करता है।

सृष्टि की उत्पत्ति का स्पष्ट वर्णन इसी अध्याय में आया है जहाँ गुरु अपने शिष्य को बताते हैं कि सबसे पहले आकाश की उत्पत्ति हुई, उसके बाद क्रमश: आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई।

अन्न का महत्त्व भी यहाँ पर वर्णित किया गया है। अन्न वास्तव में ब्रह्म का ही रूप माना गया है। अन्न से ही लोग उत्पन्न होते हैं, अन्न को खाकर ही जीवित रहते हैं और अन्त में अन्न में ही विलीन हो जाते हैं। अन्न ही सभी प्राणियों को आवश्यक ऊर्जा देने वाला है जो कि उनके अस्तित्व के लिए आवश्यक है। इसीलिए इस अध्याय में अन्न को 'सर्वौषध' कहा गया है।

इस प्रकार इस शोधकार्य में जितने भी अध्याय प्रस्तुत किए गए हैं वे सभी उपनिषदों के विभिन्न आख्यानों से अनेक प्रकार के सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक व दार्शनिक विषयों को पाठकों के समक्ष उपस्थित करते हैं। एक सामान्य व्यक्ति, जो वैदिक साहित्य के विषय में सामान्य रूप से परिचित है, वह उपनिषद् के इन सभी तत्त्वों को जानकर उपनिषदों का विद्वान् बन सकता है। एक शोध की यही विशेषता है कि वह शोध एक ही स्थान पर न रुककर भावी शोधकार्यों के लिए उपयोगी हो। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि आगे भी उपनिषद् पर अनेक स्थानों के शोधार्थियों के द्वारा जो भी शोधकार्य किए जाएंगे, उन सभी के लिए यह कार्य उपयोगी व लाभदायक सिद्ध होगा। ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

प्राथमिक स्त्रोत:-

(I)प्रत्यक्ष स्त्रोत (संस्कृत):-

1. *ईशादि नौ उपनिषद्,* शाङ्करभाष्यार्थ, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. २०६६.
2. *ईशावास्योपनिषद्,* गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. २०६१.
3. *ईशकेनोपनिषद्,* (सं.) विजयनारायण मिश्र, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९९१
4. *ऐतरेयोपनिषद्,* गीताप्रेस,गोरखपुर, सं. २०६०
5. *ऐतरेय उपनिषद्, ईशादि नौ उपनिषद्,* व्याख्याकार हरिकृष्णदास गोयन्दका, गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस गोरखपुर, सं. २०२९
6. *कठोपनिषद्,* शांकरभाष्य, डॉ. बैजनाथ पाण्डेय, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९७७
7. *कठोपनिषद्,* सानुवाद शांकरभाष्य सहित, प्रकाशक मोतीलाल अलान, गीताप्रेस गोरखपुर, सं. २०३२
8. *केनोपनिषद्,* ईशादि नौ उपनिषद्, व्याख्याकार हरिकृष्णदास गोयन्दका, गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस गोरखपुर, सं. २०४०
9. *छान्दोग्योपनिषद्,* आनन्दगिरिकृतटीका संवलिता शांकरभाष्य समेता, वाणीविलास संस्कृत पुस्तकालय, काशी, १९४२
10. *तैत्तिरीयोपनिषद्,* गीताप्रेस, गोरखपुर सं. २०६३
11. *प्रश्नोपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर सं. २०६१*

12. *माण्डूक्योपनिषद्,* गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. २०६५

13. *मुण्डकोपनिषद्,* गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. २०६६

14. *मुण्डकोपनिषद्,* ईशादि नौ उपनिषद्, व्याख्याकार हरिकृष्णदास गोयन्दका, गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस गोरखपुर सं. २०४२

15. *माण्डूक्योपनिषद्,* गोडपादीय कारिका, शांकरभाष्य तथा हिन्दी अनुवाद सहित, प्रकाशक गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस गोरखपुर, सं. २०४२

16. *श्वेताश्वतरोपनिषद्,* गीताप्रेस, गोरखपुर सं. २०६६

17. *श्वेताश्वतरोपनिषद्,* ईशादि नौ उपनिषद्, व्याख्याकार हरिकृष्णदास गोयन्दका, गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस गोरखपुर, सं. २०४०

18. *उपनिषदां समुच्चयः*, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावलिः ग्रन्थाङ्क २९(पुण्याख्यपत्तन १९२५)

19. *उपनिषद् भाष्य,* शंकरानन्द, आनन्दाश्रम संस्कृतत ग्रन्थावलिः, ग्रन्थाङ्क १७

20. *उपनिषद् भाष्य,* शंकराचार्य, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली

21. *उपनिषत्संग्रह,* जगदीश शास्त्री, मोतीलाल बनारसी दास,दिल्ली, १९७०.

22. *उपनिषद् रहस्य,* चन्द्रबली त्रिपाठी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, १९८६.

23. *ऋग्वेद संहिता*, स. पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, पारडी, १९८३.

24. *एकादशोपनिषद्,* सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, विजयकृष्ण लखनपाल प्रकाशन, दिल्ली, २०१०.

25. *कठोपनिषद्,* गीताप्रेस गोरखपुर सं० २०२७.

26. *छान्दोग्योपनिषद्*, शाङ्करभाष्यार्थ, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. २०६७.

27. *दशोपनिषद्,* आनन्दाश्रन संस्कृत ग्रन्थावली, ग्रन्थाङ्क(१०६), १९३७.

28. *बृहदारण्यकोपनिषद्,* गीताप्रेस गोरखपुर, सं० २०२७.

29. *बृहदारण्यकोपनिषद्,* शाङ्करभाष्यार्थ, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. २०६७.

30. *यजुर्वेद संहिता,* स. पं. श्री पाद दामोदर सातवलेकर, पारडी, १९८३.

31. *सामवेद संहिता,* स. पं. श्री पाद दामोदर सातवलेकर, पारडी, १९८३.

(II) प्रत्यक्ष स्त्रोत (आंग्ल):-

1. Swami Sivananda, *Principal Upanisads* (Vol.1), (Eng. Trans. & comm.), The Yoga Vedanta Forest University, Divine Life Society, Rishikesh, 1950.
2. Robert Ernest, *The Thirteen Principal Upanisads,* Oxford University Press, London, 1921.
3. *Ten Principal Upanishads,* Radhakrishan, S., Trans.- N.A. Nikam, Somaiya Publication Pvt. Ltd, Bombay,1974.

असाक्षात् स्त्रोत

1. *अथर्ववेद संहिता,* (सुबोध भाष्य) श्रीपाददामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी (सूरत), १९५८
2. *अथर्ववेदः,* (शौनकीयः), श्रीसायणाचार्यकृतभाष्येण संयोजितः (सम्पा.) विश्वबन्धु विश्वेश्वरानंद वैदिक शोध संस्थानम्, होशियारपुरम्, १९६१
3. *अथर्ववेदः,* (शौनकीयः), श्रीसायणाचार्यकृतभाष्येण संयोजितः (सम्पा.) ए. महादेव शास्त्री तथा के. रंगाचार्य, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९८४ (प्र. सं.)
4. *अथर्ववेद संहिता,* (सम्पा.) नागशरण सिहं, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, १९८७

5. *अथर्ववेद संहिता,* डॉ रघुवीर, सरस्वती विहार, लाहौर, १९९३(वि.सं.)

6. *अथर्ववेद संहिता,* (सम्पा.) देवीचन्द, मुन्शीराम मनोहरलाल, दिल्ली, २००१

7. *अथर्ववेद संहिता,* (सरल हिन्दी भावार्थ सहित), श्रीरामशर्मा आचार्य, युग निर्माण प्रेस, गायत्री तपोभूमि, मथुरा (उत्तरप्रदेश), २००८

8. *अथर्ववेद संहिता,* (भा.) स्वामी दयानन्द सरस्वती, (सम्पा.) पंडिता राकेश रानी, वेदमन्दिर, महात्मा वेद भिक्षु सेवाश्रम, दिल्ली

9. *ऋग्वेद संहिता* (दयानन्द भाष्य), वैदिक यंत्रालय, अजमेर, वि.सं. १९८०

10. *ऋग्वेद संहिता* (मूल), स्वाध्याय मण्डल, पारडी, सूरत, १९५७

11. *ऋग्वेद संहिता* (स्कन्दस्वामी, उद्गीथ, वेंकटमाधव, मुद्रल भाष्य), विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर, १९६७

12. *ऋग्वेद संहिता* (सायण भाष्य), वैदिक संसोधन मण्डल, पूना, १९८३

13. *ऋग्वेद संहिता,* सायणाचार्यकृतभाष्यसहित, (अनु. तथा सम्पा.) डॉ. जियालाल कम्बोज, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, (प्र. सं.) २००२

14. *ऋग्वेद संहिता,* सायणाचार्यकृतभाष्यसहित, (अनु. तथा सम्पा.) रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, २००३

15. *ऋग्वेद संहिता,* (जयदेव भाष्य), आर्य साहित्य मण्डल, वाराणसी

16. *काठक संहिता,* (सम्पा.) पं. सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, १९४३

17. *किरणावली,* (हिन्दी भाषाव्याख्यानसमलङ्कता) उदयनाचार्य प्रणीता सम्पादकोऽनुवादकश्च गौरीनाथ शास्त्री, सम्पूर्णानन्द- संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणस्याम्, संस्कृतम्, द्वितीयम्।

18. *गोपथ ब्राह्मण*, (सम्पा.) डॉ. प्रज्ञा देवी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, १९९९

19. *जैमिनीय ब्राह्मण*, (सम्पा.) डॉ. लोकेशचन्द्र, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९८६

20. *निरूक्त (यास्क),* छज्जुराम शास्त्री (व्या.) मेहरचन्द लछमनदास पब्लिकेशन, नई दिल्ली, २००८

21. *ब्रह्मसूत्र-शांकरभाष्यम्* (श्री वाचस्पति मिश्र प्रणीत 'भामती' संवलित), स्वामी योगीन्द्रानन्दकृत 'भामती' हिन्दी व्याख्या विभूषित, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९९५

22. *मनुस्मृति,* (सम्पा.) जगन्नाथशास्त्रीतैलङ्ग, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, २००२

23. *मैत्रायणी संहिता*, (सम्पा.) श्रीपाददामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, बम्बई, १९७३

24. *यजुर्वेद संहिता* (दयानन्द भाष्य), वैदिक यंत्रालय, अजमेर, १९२९

25. *यजुर्वेद संहिता,* (सुबोध भाष्य) श्रीपाददामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी

26. *वेदान्तसार, सदानन्द*, (सम्पा.) सन्तनारायण श्रीवास्तव्य, सुदर्शन प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७२

27. *वेदान्तसार, सदानन्द,* (व्या.) डॉ आद्याप्रसाद मिश्र, अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद, २००१

28. *वेदान्त परिभाषा,* धर्मराज अवधीन्द्र, व्या. गजानन शास्त्री मुसलगावंकर, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी

29. *शुक्लयजुर्वेदीयतैत्तिरीयसंहिता,* सायणभाष्यसमेता, (सम्पा.) मण्डनमिश्र:, श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्, नई दिल्ली, १९८६

30. *शुक्लयजुर्वेदीयतैत्तिरीयसंहिता,* भट्टभाष्यकरमिश्रविरचितभाष्यसहिता, (सम्पा.) ए. महादेव शास्त्री तथा के. रंगाचार्य, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९८४

31. *शतपथ ब्राह्मण*, (सम्पा.) स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती, (अनु.) गंगाप्रसाद उपाध्याय, विजयकुमार गोविन्दराम हासानंद, दिल्ली, २०००

32. *सामवेद,* (सुबोध भाष्य) श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, १९८५

33. *सर्वदर्शन संग्रह:* (सपरिशिष्ट 'प्रकाश'- हिन्दी व्याख्योपेत: माधवाचार्य कृत:, भाष्य, उमाशंकर शर्मा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, २००६

34. *श्रीमद्भगवद्गीता* (शांकरभाष्यसहित), गीताप्रेस, गोरखपुर, २०००

अंग्रेजी-

1. Barnhill, David Landis and Gottieb, S., *Deep Ecology and World Religions New essays on sacred Grounds*, State University of New York Press, 2001
2. Capra, Fritjof, *The Tao of Physics: An Exploration of the Parallels between Modern Physics and Eastern Mysticism*, Shambhala Publications, Berkley, California, 1991
4. Capra, Fritjof, *The Web of Life 'A New Synthesis of Mind and Matter from the author of the Tao of Physics*, Harper Collins Publishers, 1996

5. Capra, Fritjof *The Turning Point: Science, Society, and the Rising Culture*, (1982), Simon and Schuster, Bantam paperback 1983
6. Chaubey, Braj Bihari, *Treatment of Nature in the Rigveda*, Vedic Sahitya Sadan, Hoshiarpur, 1970
7. Chemistry, Part-2, National Council of Education research and Training, New Delhi 2011
8. Descartes, Rene, (Edited by John Cottingham) *Meditions on First Philosophy*, with *Selection from the objection and Replies*, Cambridage University Press, London 1996
9. Descartes, Rene, *Principles of Philosophy*, Wilder Publication Limited 2009
10. Das, Indulata, *Mysticism and The Upanisads*, Nag Publication, Delhi, 2002
11. *Einstin: The meaning of relativity*, London and NewYork, 2012,Ed I first India reprint
12. *Einstein:The World As I see It*, filliquarian publishing, LLC
13. F.Max Muller, *The Upanishads*.Vol.1, Motilal Banarasidas, Delhi 1965
14. *Geography*, Unit-2, Chapter-2, NCERT and Training, New Delhi, 2011
15. Isaacson, Walter, *Einstien His Life and Universe*, pocket books, 2008
16. Jitatmanand, Swami, *Holistic Science and Vedanta*, Bhartiya Vidya Bhavan, Mumbai, 1991
17. Jitatmananda, Swami, *Modern Physics and Vedanta*, Bharatiya Vidya Bhavan, Mumbai, 2012
18. Lakhmir Singh and Manjit kaur, *Chemistry*, Part-2, S. Chand Publication, New Delhi
19. Mishra, Rudrakanta, *Theory of Creation*, Tirabhukti Publication , Allahabad, 1992

*20.*Mukhyananda, Swami, *Vedanta in Context of Modern Science (A Comparative Study)* , Bharatiya Vidya Bhavan, Mumbai, 1997

21.Panda, N. C., *Māyā in Physics*, Motilal Banarsidass Publishers Private Limited, Delhi, 2005

22.Phillips, A.C., *Introduction of Quantum machanics,* John Wiley and Sons Ltd

23.R.C. Dwivedi, *Brahamanas and Upanishads,* Motilal Banarasidas First edition, 1965

24.Schrodinger, ERWIN, *What is Life?*,London Cambridge University Press, 2010

25.Schrodinger, Erwin, *My View of The World,* Ox Bow Press, Woodbridge Connecticut 1983

*26.*Tathagatananda, SwamiI, *Albert Einstein his Huuman Side,* The Vedanta Socienty of New York, 2009

*27.*Verma, Shri Ram, *Vedas: The Source of Utimate Science,* Nag Publication, Delhi, 2005

28.Werner Heisenberg, *Physics and philosophy*, Harper and Row publication, New York,1958

29.Werner Heisenberg, *Physics and Beyond*, Harper and Row publication, New York

द्वितीयक स्त्रोत (हिन्दी):-

1. भाष्यकार- दामोदर सातवलेकर, *अथर्ववेद का सुबोध भाष्य* (भाग ६-१०), स्वाध्याय-मंडल पारडी, १९८५.

2. भाष्यकार- दामोदर सातवलेकर, *ऋग्वेद का सुबोध भाष्य* (चतुर्थ भाग), स्वाध्याय-मंडल पारडी, १९८५.

3. अखिलदास, *उपनिषद् सौरभ*, कबीर पारख संस्थान, इलाहाबाद, १९९४

4. अग्रवाल, वासुदेवशरण, *वेदरश्मि,* स्वाध्याय मण्डल, पारडी, सूरत, १९६५

5. अवस्थी, विश्वम्भर दयाल, *वैदिक संस्कृति और दर्शन,* सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद, १९७९

6. आचार्य, बलवीर, *ऋग्वेदीय ब्राह्मणों का सांस्कृतिक अध्ययन,* विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, १९९१

7. उपाध्याय, बलदेव, *भारतीय दर्शन,* शारदा मंदिर, वाराणसी, १९९७

8. उपाध्याय, रामानुज, *वैदिक देवता तत्त्व विमर्श,* साहित्यकार सहयोगी प्रकाशन, मदैनी, वाराणसी, १९९९

9. उर्वी, *यजुर्वेदीय ब्राह्मणों के प्रमुख आख्यानों का समीक्षात्मक अध्ययन,* जे.पी. पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली(प्रथम संस्करण) १९९४

10. एस. राधाकृष्णन, *भारतीय दर्शन,* राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, १९६६

11. कुमार, शशिप्रभा, *वैशेषिक दर्शन में पदार्थ निरूपण,* प्रकाशन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, १९९२

12. कुमार, शशिप्रभा, *वैदिक विमर्श,* जे.पी. पब्लिशिंग हाऊस, १९९६

13. कुमार, शशिप्रभा, *वैदिक अनुशीलन*, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, *१९९८.*

14. कृष्णलाल, *संस्कृत शोध प्रक्रिया एवं वैदिक अध्ययन,* विभुवैभवम्, दिल्ली, १९७८

15. कृष्णलाल, (सम्पा.), *वैदिक संहिताओं में विविध विद्याएं,* जे.पी. पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९९३

16. कृष्णलाल, *वैदिक वाङ्मय विश्लेषण,* जे.पी. पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९९३

17. कृष्णलाल,(सम्पा.) *वेद व्याख्या और वैदिक विचारधारा,* नाग पब्लिशिंर्स, दिल्ली(प्रथम संस्करण), १९८७

18. चतुर्वेदी, गिरिधर, *वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति,* बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९७२

19. तिवारी, केदारनाथ, *तत्त्वमीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा,* मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, २००४(च.सं.)

20. त्रिपाठी, चन्द्रबली, *उपनिषद् रहस्य भाग१,* नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, १९८६

21. द्विवेदी, कपिलदेव, *अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन,* विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, वाराणसी, प्रथम संस्करण, १९८८

22. प्रसाद, हनुमान, *उपनिषदों के चौदह रत्न,* गीताप्रेस,गोरखपुर, २००६

23. भारद्वाज, ईश्वर, *उपनिषदों में सन्यासयोग-समीक्षात्मक अध्ययन,* क्लाशिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, १९९३

24. भाटिया, ऋषि गोपाल, *सृष्टि की उत्पत्ति,* सिद्धार्थ पब्लिकेशन, करनाल, १९९०

25. राधाकृष्णन् एस., *उपनिषदों का सन्देश,* राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, १९८१

26. राधाकृष्णन् एस., *उपनिषदों की भूमिका,* राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, १९८१

27. रानाडे, आर.डी,(अनु.) रामानन्द तिवारी, *उपनिषद् दर्शन का रचनात्मक सर्वेक्षण,* राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर,१९८१

28. रंगनाथानन्द, स्वामी, *उपनिषदों का सन्देश,* रामकृष्ण मठ, नागपुर

29. रानी, प्रतिभा, *वैदिक संहिताओं में आचार मीमांसा,* परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली, १९८९

30. वर्मा, विष्णुकान्त, *सृष्टि उत्पत्ति की वैदिक परिकल्पना,* प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, २००८

31. स्वामि, विद्यानन्द सरस्वती, *अध्यात्म-मीमांसा,* सुषमा प्रकाशन, दिल्ली, १९९९

32. स्वामि, महात्मा नारायण, *उपनिषद् रहस्य(एकादशोपनिषद्),* विजय कुमार गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली,२००९

33. सरस्वती, दयानन्द, *उपनिषत्समुच्चय,* चौधरी एण्ड सन्स, बनारस, १९३३

34. सिद्धान्तालंकार, सत्यव्रत, *उपनिषद् प्रकाश*, विजय कृष्ण लखनपाल,नई दिल्ली

35. सिद्धान्तालंकार, सत्यव्रत, *वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार,* विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली, २००२

36. सिहं, विरेन्द्रपाल, *उपनिषद्-दर्शन,* पंकज पब्लिकेशन, दिल्ली, १९९४

37. शास्त्री, डॉ मंगलदेव, *भारतीय संस्कृति का विकास औपनिषद् धारा*, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी १९६६

38. राधाकृष्णन, *उपनिषदों का संदेश*, राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, १९५१.

39. वैदिक, वेदवती, *उपनिषद् वाङ्मय : विविध आयाम*, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, १९९७.

40. वैदिक, वेदवती, *उपनिषद् युगीन संस्कृति*, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, २००३.

41. वैदिक, वेदवती, *उपनिषदों के निर्वचन*, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, २००३.

42. वैदिक, वेदवती, *श्वेताश्वेतरोपनिषद् : एक दार्शनिक अध्ययन*, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९८४.

43. वैदिक, वेदवती, *उपनिषदों के ऋषि*, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, १९९७.

44. वेदालंकार, जयदेव, *उपनिषदों का तत्त्वज्ञान*, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, २००१.

45. शर्मा, उमाशंकर, *भारतीय संस्कृति*, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, २०११.

46. कुमार, सुरेन्द्र, *वैदिक आख्यानों का वैदिक स्वरूप*, सत्यधर्म प्रकाशन, कोटपूतली, जयपुर(राज०),१९९६

Indirect Sources (English):-

1. Brown, George, *The Human Body in the Upanisads*, Jubbulporre, The Christian Mission Press. Ori. Diss- Johns Hopkins University,1921

2. Ranganathananda, Swami, *The Message Of The Upanisads,* Bharatiya Vidya Bhavan, Mumbai, 2007.
3. Radhakrishan, S., *Indian Philosophy*, George Allen and Unwin Ltd., London,1940.
4. Sharma, Baldevraj, *Concept of Atman in the Principal Upanisads*, Dinesh Publication, Delhi,1972.
5. Aurobindo, Sri, *Kenopanisad,* Reprint (Pondicherry, 1970

6. Bali, Suryakant (ed.), *Historical and Critical studies in the Atharvaveda* Nag Publishers, Delhi, 1981
7. Besant, Annie, *The Wisdom of Upanisads*, Pub.The Theosophical publishing House:1990
8. Belwalker, S.K. Ranade, *History of Indian Philosophy*, Poona 1927
9. Chaubey, Braj Bihari, *The New Vedic Selection*, Bhartiya Vidya Prakashan, Varanasi, 1972
10. Chakravarty,S.C., *The Philosophy of the Upanishads*, New Delhi 1992
11. Dwivedi, O.P., *World Religion and Environment*, Gitanjali Publishing House, New Delhi (India), First Published in 1989
12. Deussen, Paul, *The Philosophy of the Upanishads*, New York 1966
13. Deussen, Paul, *Sixty Upanishads of the Veds*, Vol.I and II, Delhi 1980
14. Deshpande, Dhananjay, *Modern Science in Vedas,* Bharatiya Vidya Bhawan, Mumbai, 2007
15. Dakshinamurti, Chirravuri, *Origin of Universe Vedic Approch*, Bharatiya Vidya Bhawan, Mumbai, 2007
16. Esq Colebrook, H.T., *Essays on the Religion and Philosophy of Hindus*, Ashok Publications, New Delhi 1978
17. Frawley, David, *The Creative Vision of the Early Upanisads*, Rajshri Printers, Madras 1982
18. Ghatak, Ajoy, *Albert Einstein, a glimpse of his life*, philosophy and Science, viva Books, New Delhi, 2011
19. Gadker, Gajendra K.V., *New Upanisadic Philosophy*, Bombay 1959
20. Gough, A.E., *The Philosophy of the Upanishads*, Delhi 1975
21. Hume Rebrot Earnest, *The Thirteen Principal Upanishads*,1931

22.Jha, V.N., *Environmental conciousness in the Sanskrit literature*, center of advance study, Pune, Maharastra

23.Kalam, A. P. J., Abdul, *Ignited Minds,* Penguin books, India, 2002

24.Kar, Namita, *Humanistic Trends in Some principal Upanishads,* Delhi 1980

25.Keith, A.B., *Ancient India Education*, Oxford University Press, 1942

26.Lovelock, James, *Healing Gaia,* Harmony Books, New York, 1991

*27.*Lovelock, James, *The Ages of Gaia: A Biography of our living Earth,* New York, Norton, 1995

28.Lovelock, James, *Gaia: A New Look At Life on Earth,* Oxford University Press, 2000

*29.*Lovelock, James, *Homage to Gaia: The life on an Independent Scientist,* Oxford University Press, 2001

30. Lovelock, James, *The Revenge of Gaia: Why the Earth is Fighting Back and how we can still same Humanity*, Santa Barbar CA; Allen lane 2007

31.Lovelock, James, *The Vanishing Face of Gaia Ages of Gaia: A Final Warning*, NY:Basic Books, New York

32. Mahadevan, T.M.P, *The Upanisads*, Bharitiya Kala Prakashan, Delhi: 2004

33. Margulis, lynn, *Gaia: The Living Earth, Dialogue with Fritjof Capra*, The Elmwood News Letter, Berkeley, Cal., Vol. 5, 1989

34. Mukhopadhyaya, Gobind Pal, *Studies In The Upanisads*, Calcutta:1960

35.Mukhopadhyaya, G.G., *Studies In the Upanisads*, Calcutta: 1960

*36.*Murthy, S. R. N. , *Vedic View of the Earth-A Geographical Insight into the Vedas,* D.K. Printworld (P) Ltd., New Delhi, 1997

37.Maxmuller,F., *The Upanishads,*vol I and XV, Delhi 1975

38.Prime, Ranchor, *Hinduism and Ecology Seeds of Truth*, Cassell Publishers Limited, New York, Reprinted 1996

39.Patwardhan, K.A.,*Upanishad and Modern Biology*, Bombay 1957

40.Ranade, R.D. , *A Constructive Survey of Indian Philosophy*, Poona 1926

*41.*Sharma, Baldev Raj, *The concept of Atman in the Principal Upanisads*, Dinesh Publications, New Delhi-15

42.Sprentak, Charlene, *Lost Goddess of Early Greece*, Moon Books, 1978

43.Swami, Abhedanada, *Philosophy and Religion,* Calcutta 1951

*44.*Sharma Maan, *Life in the Upanishads*, *Delhi 1985*

45.S.Radhakrishnan, *The Principal Upanisads*, Harper Collins Publishers, Uttar Predesh, 2011

46.Vannucci, M., *Human Ecology in the Vedas*, D. K. Printword (P) Ltd., New Delhi, Frist Published in India, 1999

47.Vernadsky, Vladimir, *The Biosphere*, (Reprint) Synergetic Press, Oracle, Arizona, 1986

शोध पत्र–पत्रिकाएँ:-

संस्कृत-हिन्दी:-

1. कुमार, शशिप्रभा, *उपनिषत्सु नैतिक-शिक्षाया: स्वरूपं-महत्त्वं च*, सागरिका, सागर विश्वविद्यालय प्रकाशक, (१) पृ.सं. १३-२१(२)३२.३,१९९५

2. कुमार, शशिप्रभा, *"वैदिक जीवन-दर्शन", श्रुति – नैवेद्यम्,* सम्पा० प्रवेश सक्सेना, जे.पी. पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, २००६.

3. कुमार, शशिप्रभा, "उपनिषदों में पञ्चमहाभूत, इन्द्रियाँ और प्राण", *वैदिक अनुशीलन*, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, १९९८

4. वैदिक, वेदवती, "उपनिषदों में मनस् तत्त्व", *उपनिषद् वाङ्मय : विविध आयाम*, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, १९९७

English:-

1. Bhattacharya, Umeshchanra, "*The Teachings of Upanisads*" Kolkata Review, Vol.3, Page. 51-62
2. Bhattacharya, Umeshchanra, "*The Home of the Upanisads*" Indian Antiquary, 1928, Vol.57, Page. 166-185
3. Bodas, M.R., "*A Brief Survey of the Upanisads*" Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Sociaty, 1908, Vol.22, Page. 67-80
4. Jha, R.N., "*Upanisadic Science of Child Conception*" in World Sanskrit Conference held from 5th to 9th April 2001 at Vigyan Bhawan, New Delhi, (ed.) Vachaspati Uapdhyaya, published by S.L.B.S.R.S.Vidyapeeth, 2007.
5. Jha, R.N., "*The Philosophy of Upanisads and Taoism*" Prevailing in Korean Culture in the 8th Pacific and Asia Conference on Korean Studies Organized by Jawaharlal Nehru University, New Delhi from 15-17 December, 2006.
6. Jha, R.N., "*Modeling Consciousness in Upanishads"* Centre in Advance Study Pune University, 2012.
7. Jordans, J., "*The Development of the Idea of Immortality inThe Upanisads*" Journal of the Oriental Institute of Badoda, 1966-67, Vol. 16, Page 1
8. Kumar, Shashiprabha, "*Vedic Conception of Human Body",* Paper Presented at 1st Asian Philosophy Congress Organised by ICPR at JNU, during March 6-9, 2010, Proceding Under Publication
9. Kumar, Shashiprabha, "*Sankara on Kena Upanisad",* Journal of Indian Council of Philosophical Research, 17(1), pp. 126-133, Delhi, 1999.

10.Kumar, Shashiprabha, "*Upanisaon mein Panch Mahabhuta, Indriyan Aur Prana' Vaidik Vanmaya mein Pranatattva"*, (ed.) Prevesh Saxena, pp. 112-122, Delhi, 1997.

11.Kumar, Shashiprabha, "Upanisatsu Naitika-SIksayah Svarupam Mahattvam Ca", Sagarika, Sagar University Journal, (1) pp.13-21(2)32.3,1995.

12.Narahari, H.G., "*ON the Origin of the Upanisadic Thought*" Puna Orientalist, Vol.6 (1941), Page 139-148

13.*Conception of God in the Mundakopanishad*, Bitai,Ramesh Chandra, (JR. of the Bombay branch of the Royal Astatic Society 1908 Vo.2, P.67-80)

14.*The Symbology of a Sacrificial Horse in Brihdaranyaka Upanishad*,V.P.Bhatta, AIOC, 1969 P.P.226

15.Barua, Arati, *Schopenhauer in the light of Indian philosophy: With a Special reference to Shankar's Advita Vedanta*

16. *आधुनिक युग और उपनिषद् दर्शन,स्टडीज इन इन्डोलोजी एण्ड म्युजिकोलोजी,* डॉ. पी. एन. कवठेकर फेलिसिटेशन वाल्युम, दिल्ली, १९९३

कोश ग्रन्थ:-

संस्कृत- हिन्दी

1. *अमरकोश*, अमरसिंह, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९६१.

2. *उपनिषद्वाक्यमहाकोश:* (उपनिषदां वाक्यै: सम्भृत:), सम्पा० एस. एस. गजानन सघाले, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली.

3. *वाचस्पत्यम्* (छ: भाग), चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला, ग्र.सं.-९४, वाराणसी,१९६९.

4. *वैदिक पदानुक्रम कोश:*, मोरिस ब्लूमफिल्ड रचित, सम्पा. ओमनाथ बिमली, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, २००४.

5. शब्दकल्पद्रुम*:*, (पाँच भाग), चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला, ग्र.सं.-९३, वाराणसी, १९६७.

6. *भारतीय दर्शन बृहत्कोश* (भाग प्रथम से चतुर्थ तक), बच्चूलाल अवस्थी, शारदा पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, २००५.

7. *संस्कृत- हिन्दी शब्दकोश*, वामन शिवराम आप्टे, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, २००७.

8. *'उणादिसूत्रव्याख्या' उणादिकोष,* दयानन्द सरस्वती, अजमेर, सं.-२०२१

9. *न्यायकोश,* भीमाचार्य झलकीकर, भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना-१९७८

10. *भारतीय संस्कृति कोश,* (सं.) देवेन्द्र मिश्रा, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, २००६

11. *मेदिनीकोष,* मेदिनीकार, काशी, संस्कृत सीरीज, बनारस, १९१६

12. *वैदिक निर्वचन कोष, डॉ जियालाल, जे.पी. पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, २०००*

13. *वैदिक इण्डेक्स*, मैकडॉनल और कीथ, (अनु.) डॉ. रामकुमार राय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणासी, १९२६

14. *वैदिक कोश*, चन्द्रशेखर उपाध्याय एवं अनिल कुमार, नाग प्रकाशन, दिल्ली १९९५

15. *वैदिक- कोश,* भगवद्दत एवं हंसराज, विश्वभारती अनुसन्धान परिषद्, ज्ञानपुर, वाराणसी, १९२६

16. *वैदिक-कोश* (दयानन्द भाष्याधारित), पं. राजवीर शास्त्री, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, १९९९

17. *वैदिक निघण्टु संङ्ग्रह,* (सं.) धर्मवीर विद्यावारिधि, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ (सोनीपत) १९८९

18. *वैदिक निर्वचन कोष,* डॉ जियालाल कम्बोज, जे. पी. पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली २०००

19. *शांकरवेदान्तकोश,* डॉ मुरलीधर पाण्डेय, वाराणसी, १९९८

20. *हिन्दी विश्व कोश* (१-१२ खण्ड), (सं.) कमलापति त्रिपाठी, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी, १९७०

English:–

1. *English – Sanskrit Dictionary,* Monier Willams, Munshi Ram Manohar Lal, Delhi, 1976.
2. *Pratical Sanskrit – English Dictionary*, V.S. Apte, Motilal Banarsidass, Delhi, Vikrami Samvat 2022.
3. *A Concordance to the Principal Upanishads and Bhagavadgita*, Colonel G.A. Jacob, Motilal Banarasidas, Delhi, 1999
4. *Encyclopedia of Indian Philosophy*, Vol.1, Karl H. Potter, Motilal Banarasidas, Delhi, 1995
5. *Encyclopaedia Britannica, Micropaedia* (vol.1-10), Helen Heminqway, Benton, ed:15th, 1973-74

6. *Encyclopaedia of Indian Philosophy, Vol. 1, Karl H. Potter, Motilal Banarasidas, Delhi, 1995*
7. *Encyclopaedia of Vedanta*, Sharma, Ram Murti, Eastern Book Linkers, Delhi, 1993
8. *English-Sanskrit- Dictionary*, (Reprint edition) Monier Williams, Munshi Ram Manohar Lal, Delhi
9. *Sanskrit-English Dictionary*, Monier William, Sharda Publishing House, Delhi, 2005
10. *The Encyclopedia of Philosophy*, Vol.3, Editor in chief-Paul Edwards, Collier Macmillan Limited, London, 1967
11. *Upanishad Vakya Kosha*" Concordance To The Principal Upanishads And Bhagavita, George Adolphus Jacob, Motilal Banarsidass Pub.1986, page 1982
12. *Vedic Index of Names and Subjects*, A. A. Macdonell & Keith, Motilal Banarsidas, Delhi, 1982
13. *Vedique Biblliographie*, Louis Renou (ed.) R.N. Dandekar, Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona

अन्तर्जालीय स्त्रोत (Internet Sources)

1. http://www.en.wikipedia.org/wiki/deep-ecology
2. http://www.lifepositive.com/mind/philosophy/gaia
3. http://www.nanotechnology.com
4. https://hi.wikipedia.org/s/6fuu
5. http://hi.wikipedia.org/s/32t
6. https://hi.wikipedia.org/wiki/विशिष्ट_आपेक्षिकता
7. http://hi.wikipedia.org/wiki/तरंग_कण_द्वैधता

8. http://hi.wikipedia.org/wiki/कण_भौतिकी
9. https://en.wikipedia.org/wiki/Wave%E2%80%93particle_duality